योगविद्या

वर्ष 3 अंक 10
नवम्बर 2014
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत
विश्व योग सम्मेलन 2013 विशेषांक

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2014

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 64 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती एवं स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: विश्व योग सम्मेलन, पोलो मैदान; 2: सत्यम् योग प्रसाद, गंगा दर्शन; 3: गुरु पीठ, सत्यम् उद्यान; 4 & 5 : शिवालय, मुंगेर; 6: सत्यम् उद्यान; 7: सत्यम् वाटिका; 8: श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ, पादुका दर्शन

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

वसुधैव कुटुम्बकम्

एक ही विश्व के रहने वाले हम मानव, एक ही आकाश के नीचे, एक ही चन्द्र की सौम्य, स्निग्ध ज्योत्सना में परिप्लावित, एक ही सूर्य को जन्मदाता मानते हैं। तब क्यों नहीं हम आज विश्व-धर्मचक्र का उदय करें? तब क्यों नहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारा लक्ष्य और पथ हो, हमारा धर्म और अद्वैत कर्तव्य हो?

आज विश्व-बन्धुत्व के नाते हमने कितनी परोपकारिता से जन-जन के कल्याण का सौम्य-संकल्प विश्वपिता के पवित्र नाम पर किया है और कितनी बार हमें विश्वास हुआ कि विशाल भूमण्डल हमारा एक परिवार है? कितनी बार हमने दूसरों के दु:खों से आक्रान्त होकर गहरी उ:श्वासें ली हैं और उनके निवारण के लिए बलिदान किया है? यदि आज तक कुछ भी नहीं कर पाये तो आओ, आज हम विश्व-धर्मचक्र की छाया में विश्व-प्रेम, विश्व-शांति, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-संघ की प्रतिष्ठा का संकल्प करें।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 3 अंक 10 · नवम्बर 2014
(प्रकाशन का 52 वाँ वर्ष)

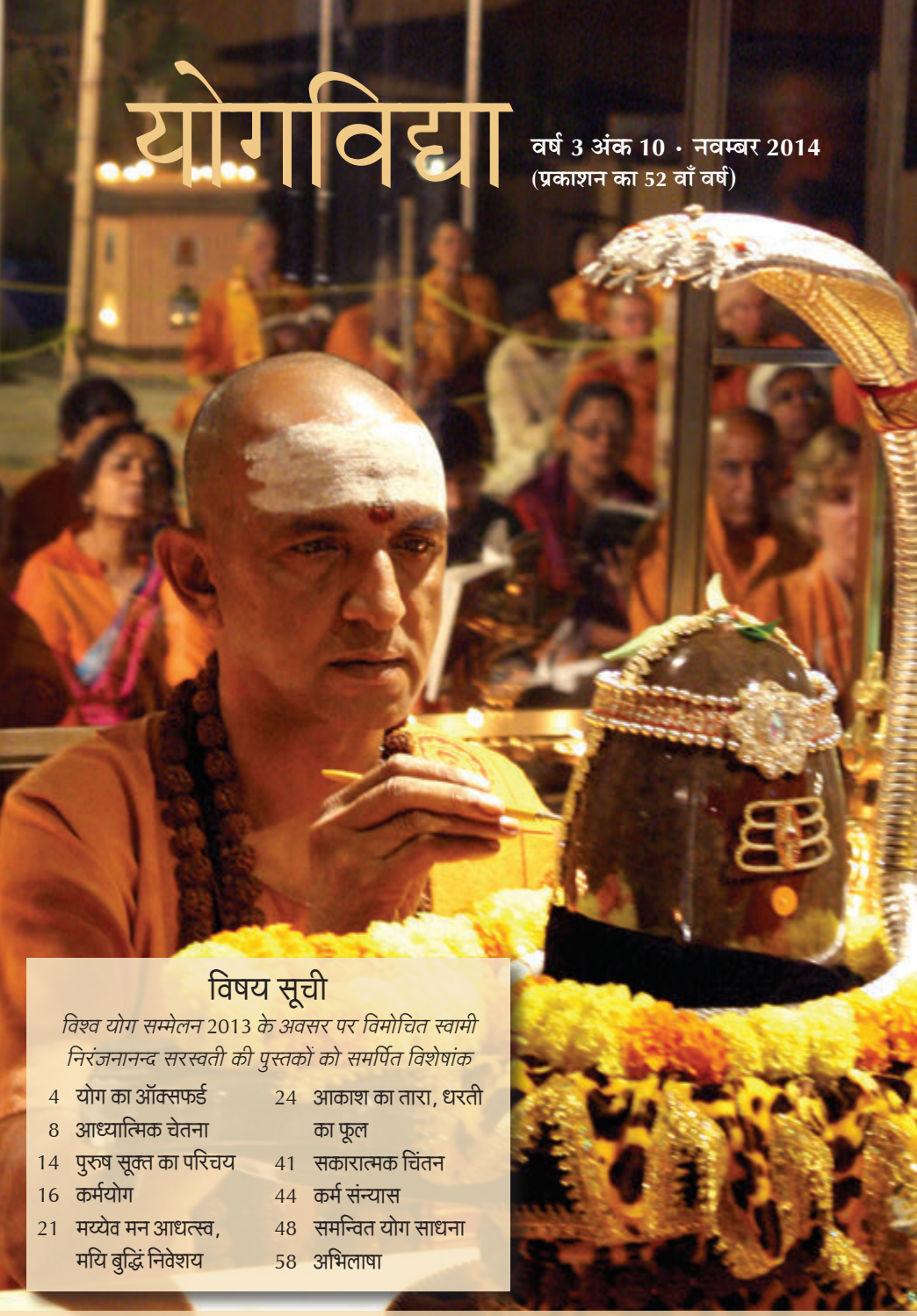

विषय सूची

विश्व योग सम्मेलन 2013 के अवसर पर विमोचित स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की पुस्तकों को समर्पित विशेषांक

4 योग का ऑक्सफर्ड
8 आध्यात्मिक चेतना
14 पुरुष सूक्त का परिचय
16 कर्मयोग
21 मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय
24 आकाश का तारा, धरती का फूल
41 सकारात्मक चिंतन
44 कर्म संन्यास
48 समन्वित योग साधना
58 अभिलाषा

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योग का ऑक्सफर्ड

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'बिहार योग विद्यालय का इतिहास' से उद्धृत

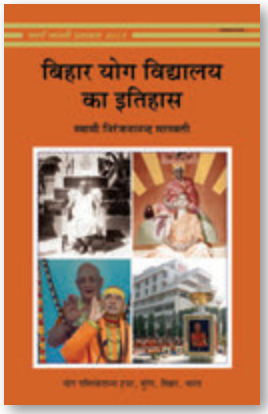

14 जुलाई, 1963 को जब स्वामी शिवानंद जी महासमाधि में लीन हुए, तब श्री स्वामीजी मुंगेर में थे। संन्यास परम्परा के अनुसार जिस समय गुरु समाधि लेते हैं, तब उनके संन्यासी शिष्य जहाँ-कहीं भी हों, वहीं स्थायी रूप से बस जाते हैं। श्री स्वामीजी उस समय यहाँ मुंगेर में थे, इसलिए उन्होंने बिहार योग विद्यालय की स्थापना यहीं पर की। जिस दिन से विद्यालय की आधारशीला रखी गई, श्री स्वामीजी का ध्यान केवल इस बात पर रहा कि योग को एक विद्या, विज्ञान और जीवनशैली के रूप में कैसे विकसित किया जाए। उनके सारे प्रयत्न इसी दिशा में रहे।

संन्यास प्रशिक्षण

श्री स्वामीजी ने मुंगेर के नवनिर्मित आश्रम में संन्यासियों को प्रशिक्षण देना आरंभ किया। संन्यासियों का पहला समूह उनके पास सन् 1964 में आया, जिसमें कुल छः लोग थे। मैं भी उनमें से एक था। श्री स्वामीजी के संन्यास प्रशिक्षण की शुरुआत इस छोटे-से समूह के साथ हुई, और निश्चित रूप से उन्होंने हमें कड़ा प्रशिक्षण दिया। फिर आश्रम द्वारा योग कक्षाओं, सत्रों और सम्मेलनों का संचालन होने लगा। मैं सन् 1964, 65 और 66 की बात कर रहा हूँ। उसके बाद एक-दो की संख्या में लोग आने लगे, योग विद्यालय से जुड़ने लगे। वहाँ नियमित रूप से पंद्रह दिन और महीने भर के प्रशिक्षण सत्र चलने लगे। भारतीयों के लिए छः महीने का योग साधना सत्र भी संचालित हुआ, जिसमें लगभग साठ लोगों ने भाग लिया।

इसके बाद आश्रम में नौ महीने का अंतर्राष्ट्रीय योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र संचालित हुआ, जिसमें डेनमार्क, फ्रांस, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। नौ महीने का प्रशिक्षण प्राप्त कर इन संन्यासी शिक्षकों ने अपने-अपने देश लौटकर योग के प्रथम विद्यालयों और केन्द्रों की स्थापना की। तत्पश्चात् सत्तर के दशक से योग का कार्य पूरे विश्व में फैलने लगा। श्री स्वामीजी ने सन् 1970 में त्रिवर्षीय संन्यास सत्र संचालित किया, जिसमें 108 प्रतिभागी शामिल हुए। 108 के उस समूह से अनेक संन्यासी अभी भी योग आंदोलन में सक्रिय हैं, और इन्हीं लोगों ने विश्व के अनेक देशों में जाकर योगाश्रम और योग विद्यालय स्थापित किए हैं।

वास्तव में बिहार योग परम्परा का निर्माण इन्हीं संन्यासियों ने किया है। देखा जाए तो बिहार योग विद्यालय आखिर है क्या? क्या यह केवल कार्यालयों और भवनों का एक संग्रह है? भवन तो बाहर जाकर योग सिखाते नहीं। जो लोग किसी विचारधारा के विकास के लिए समर्पित होते हैं, वही उस विचारधारा के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। और जिस विचारधारा, जिस परम्परा के हम प्रतिनिधि हैं, वह है बिहार योग या सत्यानन्द योग परम्परा।

दुनियाभर में अनेक व्यक्तियों, केंद्रों और संस्थाओं द्वारा योग सिखाया जाता है। एक दृष्टि से योग भी शिक्षा जगत् के अन्य विषयों जैसा है। कला, विज्ञान और वाणिज्य के जो विषय किसी एक विश्वविद्यालय में सिखाए जाते हैं, वही दूसरे विश्वविद्यालयों में भी सिखाए जाते हैं, चाहे वह इंग्लैण्ड में हो या चीन में या अमेरिका में। इतिहास, भूगोल, गणित, कला, विज्ञान, वाणिज्य—यही विषय तो सभी विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। लेकिन कुछ विश्वविद्यालय श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित माने जाते हैं। क्यों? उन शिक्षकों के कारण जो अपने-अपने विषय में शिक्षा का उच्चतम स्तर बनाए रखने का बीड़ा उठाते हैं। आज ऑक्सफर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय दुनियाभर में जाने जाते हैं। क्यों? अपने शिक्षकों, अपने प्रोफेसरों के कारण। अगर आज ये शिक्षक बदल जाएँ, तो कल इन संस्थानों की भी प्रतिष्ठा घट जाएगी। वे साधारण संस्थान बन जाएँगे।

बिहार योग विद्यालय—योग का ऑक्सफर्ड

योग शिक्षण के लिए भी अनेक संस्थाएँ और विद्यालय हैं, जो हठ योग, राज योग और भक्ति योग जैसे योगांगों की शिक्षा देते हैं। लेकिन बिहार योग विद्यालय अपने शिक्षकों और संन्यासियों के समर्पण, निष्ठा और अथक पुरुषार्थ की वजह से आज योग का ऑक्सफर्ड बन गया है। ऐसी बहुत कम संस्थाएँ हैं जिन्होंने बिहार योग विद्यालय की तरह योग के सिद्धांतों और विधियों पर आज तक शोध और अनुसंधान जारी रखा है। बिहार योग विद्यालय के अनुसंधान का प्रमाण उस विशाल योग साहित्य में देखा जा सकता है, जिसे संस्था द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित किया जाता है। योग और अध्यात्म के इतिहास में एक नए अध्याय की रचना में बिहार योग विद्यालय का योगदान निश्चित रूप से सराहनीय है। यह मिशन आरंभ हुआ स्वामी शिवानंद जी से, जिन्होंने अपना संकल्प स्वामी सत्यानंद जी को हस्तांतरित किया और श्री स्वामीजी से यह हम तक पहुँचा है। श्री स्वामीजी की विधि अनोखी थी। उन्होंने शास्त्रीय योग का प्रवर्तन किया, लेकिन व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से। उन्होंने हम सब को योग शिक्षा और योग अनुसंधान की अनुपम प्रेरणा दी।

बिहार योग विद्यालय के समर्पित संन्यासियों और शिक्षकों ने ही इस परम्परा की निरन्तरता और पवित्रता को बनाए रखा है। देखा जाए तो श्री स्वामीजी के लिए

योग विद्यालय में संन्यास परम्परा शुरू करना अनिवार्य नहीं था। वे चाहते तो लोगों को सिर्फ योग शिक्षक बनाकर उन्हें योग केंद्र खोलने और योग सिखाने के लिए कह देते। लेकिन उनकी यह इच्छा थी, यह संकल्प था कि केवल समर्पित और निष्ठावान् लोग ही उनके मिशन से जुड़ें। ऐसे लोग ही किसी विद्या के विकास में दीर्घकालीन और सकारात्मक योगदान दे सकते हैं, उस विद्या रूपी बगीचे को सुंदर और जनोपयोगी बना सकते हैं। जब तुम किसी बगीचे में काम करते हो तो उसे सुंदर बनाने का प्रयास करते हो या वहाँ से पौधे ले जाने की ताक में रहते हो? अगर तुम्हारा कोई निजी स्वार्थ होगा, तो वही तुम्हारा मुख्य लक्ष्य बन जाएगा, न कि बगीचे को सुंदर बनाने का नि:स्वार्थ प्रयास।

श्री स्वामीजी ने कहा है कि इस मिशन की नींव तैयार कर दी गई है, ईंटें बिछा दी गई हैं। अब भवन खड़ा करने का काम तुम्हारा है, और इसके लिए हर प्रयास का स्वागत है। बिहार योग विद्यालय आज इसी मोड़ पर खड़ा है। हर एक मदद, हर एक प्रयत्न का स्वागत है। मानवता की चेतना में अब परिवर्तन लाना अनिवार्य है। इस परिवर्तन के बिना जीवन को बेहतर नहीं बनाया जा सकता। जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि की आवश्यकता है। उस सुख-सुविधा और ऐशो-आराम का क्या फायदा जो जीवन के स्तर में गिरावट लाए? जीवन की वास्तविक गुणवत्ता में अगर हम बढ़ोत्तरी कर सकें तो भोग-विलास के साधन कोई मायने नहीं रखेंगे। दिव्य जीवन के इसी संकल्प की पूर्ति के लिए श्री स्वामीजी ने संन्यासियों का प्रशिक्षण आरंभ किया, ताकि समय आने पर उनमें से कोई ऐसी विभूति निकले, जिसका अनेकों लोग अनुकरण कर पाएँ। यह परम्परा वास्तव में संन्यासियों के माध्यम से ही जीवित रहेगी।

संन्यास–दूसरों के लिए जीना

कई लोगों ने इस परम्परा में दीक्षा ली है। कई लोगों ने अपने आप को योग और अध्यात्म के पथ पर समर्पित कर दिया है, और कई लोग अपने घर-परिवार में इस सजगता के साथ आध्यात्मिक जीवन जी रहे हैं कि 'मैं एक संन्यासी हूँ'। यह भी अच्छा है, क्योंकि यह सजगता, यह पहचान तुम्हें अपने व्यक्तित्व के नि:स्वार्थ पक्ष से जोड़ती है। संन्यासी का मूल गुण है नि:स्वार्थ भावना। श्री स्वामीजी हमसे कई बार कहा करते थे, 'गाय घास खाती है, पर तुम्हें पीने के लिए दूध देती है। गाय अपना दूध खुद नहीं पीती। वह घास और चारा खाती है, जो तुम्हारे लिए कचरा है, पर उसे खाकर वह तुम्हें दूध देती है, जिससे तुम्हें पोषण मिलता है। उसी प्रकार, नदी का पानी दूसरों के लिए है, नदी अपना पानी खुद नहीं पीती। पेड़ों के फल दूसरों के लिए हैं, पेड़ अपने फल नहीं खाते। फूलों की सुगंध दूसरों के लिए है, फूल अपनी सुगंध नहीं सूंघते।'

इसी प्रकार संन्यासी का जीवन लोगों की भलाई के लिए है, अपनी भलाई के लिए कदापि नहीं। तुम जानते हो न श्री स्वामीजी ने अपने संन्यासियों के बारे में क्या कहा है–'मुझे लकड़ी नहीं, लोहा चाहिए। लोहे के बने संन्यासी ही मेरे मिशन में ठोस योगदान दे सकते हैं।' उन्होंने संन्यासियों को एक ऐसी सकारात्मक शक्ति के रूप में देखा, जो समाज को नई प्रेरणा दे सकें, समाज का उत्थान कर सकें। इसी विचार को हमें समझना और आत्मसात् करना है। किसी अस्पताल में रहने से ही कोई डॉक्टर बन जाता है क्या? तुम्हें चिकित्सा के बारे में थोड़ी जानकारी भले ही मिल सकती है, पर वास्तव में तुम डॉक्टर नहीं हो। इसी प्रकार केवल आश्रम में रहने से कोई संन्यासी नहीं बन जाता। इसके लिए कड़ी मानसिक सजगता कायम रखनी पड़ती है। ध्यान देना, मैं 'कड़ी मानसिक सजगता' शब्द का उपयोग कर रहा हूँ, जिसका मतलब निरन्तर, अटूट सजगता है।

हर कोई अपना संन्यास जीवन अपने ढंग से जीता है, लेकिन जो मुख्य बात आप लोगों को समझनी है, वह यही कि सत्यानंद परम्परा के संन्यासी होने के नाते श्री स्वामीजी ने हमें एक दिशा और एक संकल्प दिया है–योग और वेदांत का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठापन। योग यहाँ मुंगेर में है और वेदांत रिखिया में। दोनों आश्रम स्वामी शिवानंद जी के उस संकल्प के दो पक्षों के प्रतीक हैं, जिसकी पूर्ति के लिए श्री स्वामीजी ने आजीवन पुरुषार्थ किया था।

आध्यात्मिक चेतना की जागृति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'अध्यात्म के अध्याय' से उद्धृत

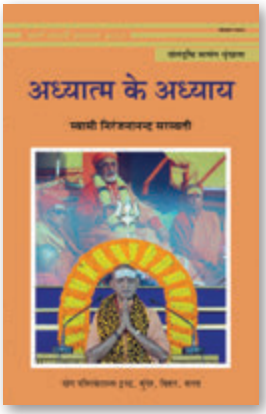

इस साल बिहार योग विद्यालय की स्थापना के पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं। पिछले पचास वर्षों में बिहार योग विद्यालय ने जो यात्रा पूरी की है, उसका उद्देश्य आध्यात्मिकता का प्रचार ही रहा है। पचास वर्ष पूर्व मुंगेर में योगाश्रम की नींव डालते हुए गुरुजी ने कहा था कि यह योगाश्रम एक आध्यात्मिक मिशन है। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह कोई धार्मिक संस्था है, बल्कि यह कहा कि हम एक आध्यात्मिक मिशन की नींव डाल रहे हैं, जिसमें हमें आप सबका सहयोग चाहिए। आध्यात्मिकता का प्रचार ही योगाश्रम का लक्ष्य, उद्देश्य और प्रयोजन है। यह कहकर गुरुजी ने इस लक्ष्य को स्पष्ट किया कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक चेतना को प्राप्त करना है। उनके इस योगाश्रम के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो रहा है, उसे देखकर हम कह सकते हैं कि वह जन-जीवन में एक आध्यात्मिक मिशन की क्रांति को ला रहा है।

पदार्थमय जीवन से आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाला जो सेतु है, उस पर हर व्यक्ति को चलना पड़ेगा। इसी को साधना कहते हैं। सेतु के एक छोर से दूसरे छोर पर पहुँचने के लिये हमें कितने कदम चलने पड़ेंगे, इसका अंदाज तो अपनी चाल को देखकर लगाना पड़ेगा। लेकिन जब हम भौतिकता से आध्यात्मिकता के इस मार्ग पर चलने लगते हैं, तब हमें सबसे पहले योग का सहारा लेना पड़ता है। योग का असर जीवन के तीन स्तरों—शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है।

योग साधना का प्रयोजन

जब लोग किसी प्रयोजनवश योग की साधना करने आते हैं, चाहे वे किसी बीमारी से मुक्त होना चाहते हों या तनाव से या मानसिक अवसाद से, उस समय वे यह नहीं सोचते कि मैं किसी प्रकार के आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ूँ। वे तो मात्र इतना ही चाहते हैं कि उनकी तकलीफ दूर हो जाए। वे पंद्रह दिन या महीने भर के लिए आते हैं। इस अवधि में जब उन्हें आसन, प्राणायाम, शिथिलीकरण और एकाग्रता के अभ्यास करवाये जाते हैं, तब उन्हें निश्चित रूप से स्वास्थ्य लाभ होता है, क्योंकि योग का असर शारीरिक स्तर पर भी होता है। आसन से रोग दूर हो जाते हैं, किसी-किसी को सौ प्रतिशत फायदा भी होता है। साथ ही योग का असर मानसिक स्तर

पर भी होता है। शिथिलीकरण और एकाग्रता की विधियों द्वारा मानसिक चिन्ता, परेशानी, तनाव, व्यथा, अव्यवस्था और विक्षिप्तता, जो रोग के कारण बनते हैं, इन अवस्थाओं से भी तुम अपने को मुक्त कर स्वस्थ हो सकते हो। जैसे-जैसे मन की चंचलता शांत होती है और शरीर स्वास्थ्य को प्राप्त करता है, मन की ऊर्जा बढ़ती है।

योग-शास्त्र में बताया गया है कि शरीर में प्राण-शक्ति और मन में चित्त-शक्ति रहती है। प्राण-शक्ति स्थूल है और चित्त-शक्ति सूक्ष्म। जिस प्रकार हम बिजली से एक बहुत बड़ी मशीन भी चला सकते हैं और बहुत ही संवेदनशील कम्प्यूटर भी, उसी प्रकार जो ऊर्जा हम लोगों के भीतर है, यह प्राण रूप में स्थूल शरीर का संचालन करती है और चित्त शक्ति के रूप में सूक्ष्म मन का। योगाभ्यास द्वारा इन दोनों में संतुलन आता है, जिससे शारीरिक रोग तथा मानसिक तनाव दूर होते हैं। मन में शांति आती है, शरीर में स्वास्थ्य आता है और हमें आनन्द, सुख, तृप्ति एवं पूर्णता की अनुभूति होती है।

योग से आध्यात्मिकता की शुरुआत अपने आप होती है। अगर तुम किसी बंजर भूमि में फूलों का बगीचा लगाना चाहते हो, तो तुम्हें सिर्फ जमीन को तैयार करना है और बीज बोना है। समय आने पर तुम्हें प्रयास नहीं करना है कि फूलों में सुगन्ध और रंग आए। वह तो अपने आप प्रकट होगा। तुम्हें केवल बीज रोपने और उसका ख्याल करने का काम करना है। इसी प्रकार योग में भी तुम्हें निश्चिंत होकर केवल आसन, प्राणायाम, योग निद्रा, ध्यान आदि का अभ्यास करना है। इन अभ्यासों के परिणाम से स्वत: शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति और आत्मिक सुख की प्राप्ति होगी। यही आध्यात्मिक चेतना की शुरुआत है।

आध्यात्मिक चेतना की जागृति से मनुष्य अपने जीवन में शुद्ध, सकारात्मक और रचनात्मक अवस्था को लाता है। ऐसा होने पर संगीतज्ञ और भी अच्छा संगीत रचने लगता है। गणितज्ञ और भी मेधावी हो जाता है, कर्मचारी और भी प्रवीण हो जाता है, साधु और भी अच्छा हो जाता है। व्यवहार-कुशलता आती है, कर्म-कुशलता आती है। यह आंतरिक शान्ति और तनावमुक्ति का परिणाम है। अपने जीवन में आध्यात्मिकता का पनपना शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति का समन्वय है। इतना होने के बाद हमें यह प्रयास करना है कि हमारे जीवन में नव-संस्कार आयें।

बच्चों में आध्यात्मिक नींव का निर्माण

हमारे गुरु स्वामी सत्यानंद जी हमेशा कहते थे कि अगर हमें अपने घर, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को सुधारना है, और केवल सुधारना ही नहीं बल्कि सम्भालना है, तो बच्चों को अच्छे संस्कार देने चाहिए। बड़े लोग तो एक आकार को प्राप्त कर चुके हैं, उनके स्वभाव और स्वरूप की आकृति बन चुकी है। अब कितना भी छेनी-हथौड़ा चला लो, पत्थर से आकृति तो निकल चुकी है। अगर उस

पर जबरदस्ती छेनी-हथौड़ा चलायेंगे, तो टूट जायेगी। लेकिन छोटे बच्चों की आकृति का निर्माण अभी होना है और यह निर्माण संस्कारों के द्वारा होता है। इसलिए बच्चों को अगर हम संस्कारों से युक्त कर सकें तो एक-दो पीढ़ी के भीतर हम अपने समाज में एक सुन्दर, सौम्य वातावरण का निर्माण कर पायेंगे।

गुरुजी हमेशा बच्चों के रख-रखाव पर ध्यान देते थे, चाहे वह मुंगेर हो या रिखिया। मुंगेर में बाल योग मित्र मण्डल के ये लाल वस्त्रधारी बच्चे तो आपके ही हैं। जब कभी इन्हें अवसर मिलता है, जब आप इन्हें अनुमति देते हो तब आश्रम आकर योगाभ्यास और बहुत सारी अन्य चीजें सीखते हैं और अपनी जिम्मेदारी पूरी निष्ठा के साथ निभाते हैं। ये जो कुछ कर रहे हैं इससे इन्हें संस्कार मिल रहा है। जो संस्कार इन्हें अभी मिल रहा है, वही बाद में इनके जीवन में एक सुन्दर, सुदृढ़ मानसिकता का निर्माण करेगा। इनमें आत्मविश्वास और प्रतिभा की कमी नहीं होगी और निश्चित रूप से भविष्य में ये उज्ज्वल नागरिकों के रूप में अपना योगदान देंगे।

हम सबका कर्त्तव्य बनता है कि हम अपने बच्चों को अच्छा संस्कार दें। पर इसमें कोई जोर-जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। बच्चों को अवसर देना चाहिए कि उनके भीतर का रंग और खुशबू अपने आप प्रकट हो। योगाश्रम में इनको वह अवसर दिया जाता है, और ये सब सुंदर फूलों जैसे चमकते हैं। इनका रंग भी दिखलाई देता है और इनकी सुगंध भी लोगों को प्राप्त होती है।

परिवार में अध्यात्म का बीजारोपण

माताओं के लिए निर्देश – बच्चों को संस्कार देना एक काम है, और माताओं द्वारा अपने घर में एक व्यवस्था का निर्माण करना दूसरा काम। बच्चों को सुसंस्कारित करने के लिए ये हमारे गुरुजी के निर्देश हैं। सबसे बड़ी भूमिका माताओं को निभानी पड़ती है, क्योंकि माताएँ हमारी संस्कृति की कर्णधार हैं। समाज को सुधारने की, परिवार में खुशहाली लाने की, और अपनी संस्कृति को बचाने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी माताओं पर होती है। गुरु तो केवल एक विचार प्रस्तुत कर सकता है, आपको प्रेरित कर सकता है, पर नये संस्कार देने का काम माता को घर में करना पड़ता है। इसके लिए घर में एक व्यवस्था होनी चाहिए।

हमारे गुरुजी कहते थे कि सप्ताह में एक दिन परिवार के सभी लोगों को बुलाकर अपने घर में सुख, शांति और स्वास्थ्य का संकल्प लेकर महामृत्युंजय मंत्र का जप करना चाहिए। घर के सभी लोग इस मंत्र का एक माला जप साथ बैठकर करें। आधे घण्टे का यह अनुशासन आप अपने घर में लागू कर सकते हैं। निश्चित रूप से परिवार के चिन्तन और संकल्पशक्ति में सकारात्मक परिवर्तन आएगा।

महीने में एक बार पूर्णिमा के दिन घर में सुन्दरकाण्ड का पाठ करें। चाहे अपने मित्रों को बुला लें, चाहे किसी के घर चले जाएँ, लेकिन पूर्णिमा के दिन सुन्दरकाण्ड

का पाठ जरूर करना चाहिए। हजारों वर्षों से लोगों का अनुभव रहा है कि सुन्दरकाण्ड का पाठ करने से कष्ट-दु:ख दूर हो जाते हैं। हमारे गुरुजी के शब्द हैं कि अपने जीवन से दु:ख और दरिद्रता के नाश का संकल्प लेकर अगर सुन्दरकाण्ड का पाठ करोगे, तो तुम्हें श्रीराम का आशीर्वाद जरूर मिलेगा।

हमारे गुरुजी मुंगेर छोड़ने के बाद जब रिखिया में एकान्तवास और पंचाग्नि साधना कर रहे थे, तब उन्होंने एक दिन एक बात कही थी, 'मैंने बहुत ग्रन्थ पढ़े हैं, बहुत ज्ञान का अर्जन किया है और शायद भगवान के बारे में, मनुष्यता के बारे में, धर्म के बारे में बहुत जान सका हूँ, लेकिन मन को कभी तृप्ति नहीं मिली। हमेशा लगता था कि कुछ कमी है। लेकिन जब मैंने रामचरितमानस का पाठ सही रूप में आरम्भ किया, तो मुझे आभास हो गया कि मुझे और कुछ पढ़ने या जानने की आवश्यकता नहीं है। जीवन का, ईश्वर का पूरा सार इस सरल और अनुपम ग्रन्थ में दिया गया है।'

जब गुरुजी यह बात कह रहे थे तब हमें यह बात समझ में नहीं आई। रामायण पढ़े हैं बहुत बार, पाठ किया है बहुत बार, अखण्ड पाठ में भी बैठे हैं। लेकिन गुरुजी की इस गूढ़ बात को समझ नहीं पाए। इस साल जब पंचाग्नि में बैठे थे, तब उस समय पंचाग्नि साधना के अन्तर्गत रामचरितमानस का पाठ भी शामिल था। पंचाग्नि साधना के दौरान हमने तीन नवाह्न पारायण पूरे किये।

जब प्रथम पारायण कर रहे थे, तब मन की जो स्थिति थी, वह कथा को ग्रहण कर रही थी। दूसरी बार जब रामचरितमानस का पारायण किया तो हमने देखा कि हमारे मन की अवस्था बदल गई है। पहले जो कागज के कोरे पन्ने पर छपे काले शब्द मात्र थे, अब वे उस रूप में नहीं दिखलाई दे रहे थे। बल्कि लगता था जैसे

वे शब्द, वे दोहे, वे छन्द, वे श्लोक रत्न-जड़ित अक्षरों से लिखे गये हैं, और वे चमक रहे हैं। हर पन्ना मानो रत्नों का भण्डार था। और तीसरी बार जब उसका पाठ किया, तो चेतना की स्थिति और भी सूक्ष्म हो गई थी। इतनी सूक्ष्म कि रामायण में साबर मंत्र दिखलाई देने लगे। यह विधि जारी रहती तो हो सकता है बहुत चीजों का आभास होता, ज्ञान होता।

श्रीराम चाहे जो भी रहे हों, बालक या राजा या मर्यादा पुरुषोत्तम या अवतारी पुरुष, आप जिस रूप में भी उन्हें देखना चाहें देख सकते हैं, लेकिन रामचरितमानस एक ऐसा अनुपम ग्रन्थ है, जिसमें राम के चरित्र को आधार बनाकर आध्यात्मिकता के चिंतनों को कूट-कूट कर भरा गया है। अध्यात्म के साधनों को वहाँ पर छिपाकर लिखा गया है, मंत्रों के रूप में। जैसे-जैसे मनुष्य इस पाठ से अपने आपको जोड़ता है, वैसे-वैसे इन मंत्रों का असर उसकी चेतना पर पड़ता है, और ये मंत्र उसकी चेतना के नए आयामों को जगाकर उसे मुक्ति की ओर ले जाते हैं।

जो अनुभव हमें हुआ, वही आपके लिए भी संभव है। शर्त केवल एक ही है कि आप भी वही करो जो हम कर रहे थे। तब आपको भी वही अनुभव होगा जो हमें हो रहा है। इसलिए रामचरितमानस को मात्र कहानी या इतिहास के ग्रन्थ के रूप में कभी मत लेना। निश्चित रूप से यह घटना घटी है, यह हमारा इतिहास है, इसमें दो मत नहीं। लेकिन इसके पाठ से जो उपलब्धि होती है, जो तृप्ति मिलती है, जो सुख मिलता है, जो शान्ति मिलती है, वह दुनिया के और किसी ग्रन्थ, साहित्य, शास्त्र या दर्शन में कहीं नहीं मिलती।

बच्चों के लिए निर्देश—बच्चों को रोज़ तीन काम करने चाहिए, सूर्य नमस्कार, नाड़ीशोधन प्राणायाम और गायत्री मंत्र का जप। बच्चों के जीवन में ये तीन अभ्यास एक अनुशासन के रूप में होने चाहिए। जैसे सबेरे उठकर हम नहा-धोकर नाश्ता करते हैं, वैसे ही सबेरे उठकर सूर्य नमस्कार का अभ्यास होना चाहिए। इससे बच्चों की शारीरिक ऊर्जा को व्यवस्थित करने में सहायता मिलेगी। साथ ही नाड़ीशोधन प्राणायाम की कम-से-कम पाँच आवृत्तियाँ करनी चाहिए। इससे बच्चों की प्रतिभा, स्मृति और मस्तिष्क तीव्र होगा। और गायत्री मंत्र के जप से वे विद्या के, गुणों के धनी बनेंगे।

पुरुषों के लिए निर्देश—घर में पिता लोगों की मुख्य समस्या उच्च-रक्तचाप है, जिसका कारण चिन्ता और तनाव है। जब आप रात को बिस्तर में सोने जाते हैं तब एक काम करना है। बिस्तर पर सीधा लेट जाना है और सोने के पहले दो मिनट अपने पूरे शरीर का ख्याल करके अपने पूरे शरीर को बिस्तर में ढीला छोड़ देना है। बिस्तर में ढीला छोड़ने के पश्चात् दिन में बीती घटनाओं को याद करना है। सबेरे हम इतने बजे उठे, उठकर ऐसा किया, ऐसे कपड़े पहने, ऐसा नाश्ता किया, ऐसी बात की, इतने बजे घर से निकले, इसके साथ मिले, उसके साथ गये—सबेरे से लेकर शाम तक जो भी घटनाएँ घटी हैं, उन्हें अपने मन में देखो। किससे क्या बात हुई, किससे प्रेमपूर्ण व्यवहार हुआ, किससे लड़ाई-झगड़ा हुआ, क्या अच्छा लगा, क्या बुरा लगा। दिन भर की घटनाओं को देखने के बाद फिर जब देखते हो कि अब मैं अपने बिस्तर पर आकर लेट गया हूँ और यह अभ्यास कर रहा हूँ, तब उस समय अपने श्वास का ख्याल करना और अपनी नाभि को श्वास के साथ ऊपर उठते और नीचे जाते देखना। फिर पचास से एक तक श्वास को उल्टा गिनना और उसके बाद सो जाना।

यह सरल-सा प्रतीत होने वाला तरीका बहुत ही शक्तिशाली अभ्यास है, जिसमें हम अपने शरीर और मन को तनावमुक्त कर पाते हैं और विश्राम की स्थिति को लाकर चैन की नींद सो सकते हैं। हमारे जीवन में उच्च-रक्तचाप का कारण चिन्ता, परेशानी, तनाव और दबाव ही है। अगर हम इन्हें दूर कर सकें, तो हमारा मन भी शांत और स्थिर हो जाएगा। एक सप्ताह अजमा करके देखिए, पसंद न आए, छोड़ देना और फायदा हो तो करते जाना।

ये तीन कार्यक्रम तनावमुक्ति के लिए, घर में एक सुन्दर वातावरण की स्थापना के लिए और बच्चों की प्रतिभा के विकास के लिए हैं। योग के माध्यम से जीवन में स्वास्थ्य और शान्ति प्रदान करना, प्रतिभा का विकास करना, लोगों में संस्कार लाना और अपने भौतिक जीवन में एक व्यवस्थित और जाग्रत आध्यात्मिक जीवन जी पाना—योगाश्रम यही कार्य पिछले पचास वर्षों से कर रहा है। जीवन का जो सत्य है, जो मूल आधार है, वह अपने जीवन में संस्कार एवं संस्कृति को लाना है। संस्कार और संस्कृति से ही जीवन में आध्यात्मिकता पनपती है।

पुरुष सूक्त का परिचय

स्वामी निरंजनानन्द प्रणीत 'पुरुष सूक्त' (स्वर्णिम संग्रह-3 में पुनर्प्रकाशित) से उद्धृत

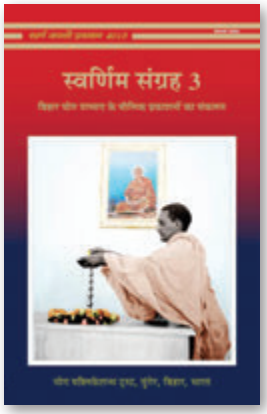

जीवन की एक अदृश्य वास्तविकता भी है, जो इस चराचर जगत् के प्रत्येक प्राणी का संचालन और नियंत्रण करती है। आधुनिक मनुष्य ने स्वयं को भौतिकता से सम्मोहित कर रखा है, जिसके कारण वह जीवन के वास्तविक तत्त्व की खोज इन्द्रियगत, मनोगत और भौतिक जीवन में करता है। प्रयत्नों के बावजूद भी वह उस अदृश्य वास्तविकता को इस दृश्यमान जगत् में प्राप्त नहीं कर पाता है। यह प्रयत्न उसी प्रकार का है, जैसे कोई किसी वृक्ष के मूल बीज की खोज उसके तने, शाखाओं, पत्तों एवं फूलों में करे।

इस मूल तत्त्व या अदृश्य वास्तविकता को अनेकों नामों, रूपों एवं गुणों से सम्बोधित किया गया है। परब्रह्म परमात्मा या परम चेतना इसकी कुछ संज्ञायें हैं। इस तत्त्व को अदृश्य, निर्विकार, निराकार एवं निर्विचार माना गया है। इसे सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान् भी माना गया है। इस तत्त्व पर चिंतन एवं शोध सभी आध्यात्मिक जिज्ञासुओं और साधकों ने किया है। जिन्होंने इसकी आत्मिक और आंतरिक अनुभूति प्राप्त की है, वे संत, ऋषि, आत्मज्ञानी, महात्मा आदि कहलाए हैं। और इन आत्मज्ञानियों ने इसे पुरुष रूप में जाना है।

इन आत्मज्ञानियों ने उस परम तत्त्व को पुरुष रूप में क्यों सम्बोधित किया? जहाँ पर पुरुष शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ पर उस सत्ता को एक रूप, एक नाम और एक गुण से विभूषित कर, उसे व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। पुरुष का तात्पर्य मानव लिंग या रूप से नहीं है। यह पुरुष शब्द दो संस्कृत शब्दों के मेल से बना है– *पुरी* और *शः*। पुरी का मतलब है नगर। नगर का तात्पर्य पदार्थ शरीर या व्यक्त सृष्टि से है। स्थावर, जंगम, पदार्थ, चर, अचर सृष्टि की अनुभूति जिस रूप में होती है, वह पुरी या नगर का रूप है। जिस प्रकार से नगर की एक सीमा होती है, उसी प्रकार सृष्टि के समस्त पदार्थों एवं अभिव्यक्तियों की एक सीमा है। इस संदर्भ में पुरी का मतलब विश्व है, जो एक नाम, रूप और गुण द्वारा सीमित है। श: का मतलब सुषुप्त, गुप्त या सूक्ष्म है। वह सत्ता जो सृष्टि में गुप्त, सूक्ष्म और सुषुप्त रूप से व्याप्त है, उसे पुरुष कहते हैं। सामान्यत: श: का सम्बंध निद्रावस्था या सुषुप्ति से किया जाता है। श: को यहाँ इसलिये जोड़ा गया कि उस निराकार तत्त्व

को साकार रूप में मनश्चतुष्टय के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। अगर उसे व्यक्त रूप से जानना संभव रहता तो श: का प्रयोग नहीं होता। वह अदृश्य, निराकार ब्रह्म पदार्थ में गुप्त रूप से विद्यमान है, वही पुरुष है।

पुरुष सूक्त परब्रह्म तत्त्व का स्तोत्र है। इसमें सृष्टि तथा दैविक और मानविक कर्म एवं लक्ष्य की चर्चा है। ये उन प्राचीन मनीषियों के उद्‌गार हैं जिन्होंने इस परमतत्त्व को पहचाना और इसकी अनुभूति को प्राप्त किया। गौतम स्मृति और बौधायन स्मृति में भी पुरुष सूक्त का उल्लेख है। यह ऋग्वेद के तैत्तिरीय संहिता का अंग है। इसके अतिरिक्त शुक्ल यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और शतपथ ब्राह्मण में भी इसका वर्णन है।

संन्यासियों को संन्यास परम्परा में निर्देशित किया जाता है कि पुरुष सूक्त का पाठ गीता, विष्णु सहस्रनाम आदि के पूर्व होना चाहिए। पुरुष सूक्त का पाठ परब्रह्म तत्त्व की व्याख्या करता है, यह चेतना को सूक्ष्म एवं ग्रहणशील बनाता है और उस अदृश्य तात्त्विकी अनुभव को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रोत्साहित करता है।

कर्मयोग–मनोनियंत्रण की विधि

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'कर्म और कर्मयोग' से उद्धृत

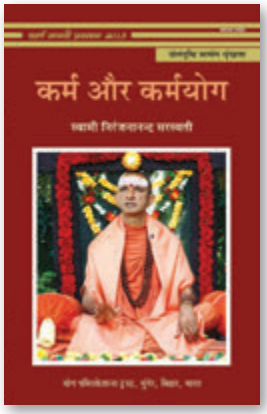

अपने आप को निम्न मन के स्तर से उबारकर उच्चतर मन में स्थापित करना, यही सभी साधनाओं का आधार है। अपनी निम्न, मूढ अवस्था में हमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के कर्मों की जो व्यवस्था करनी पड़ती है, उसी व्यवस्था को कर्मयोग कहते हैं।

कर्मयोग का सम्बन्ध सिर्फ शारीरिक क्रिया-कलापों से नहीं, बल्कि सूक्ष्म आयामों में हो रही गतिविधियों से भी है। गुण, मूल प्रवृत्तियाँ, स्वभाव और संस्कार सूक्ष्म होते हैं और जब उनका बुद्धि, चित्त और अहंकार से संयोग होता है तभी जीवन में कर्म आरम्भ होता है। जब तक गुण अपना प्रभाव नहीं दिखाते, तब तक मूल प्रवृत्तियाँ कोई बाहरी परिवर्तन नहीं ला सकतीं, चाहे उनका कितना ही पारस्परिक संयोग क्यों न हो। ये सारी गतिविधियाँ अन्दर में होती हैं, उनकी कोई बाह्य अभिव्यक्ति नहीं होती। किसी चीज पर सजगता तभी जाती है जब वह अभिव्यक्त होती है। कोई नहीं जानता कि मिट्टी में बोए गए बीज में क्या हो रहा है। जब उसका अंकुर फूट कर बाहर आता है तब जाकर हमें उसके विकास का पता चलता है। अंकुर के निकलने के लिए अनेक सूक्ष्म आन्तरिक क्रियाएँ घटित होती हैं–बीज का कड़ापन समाप्त होता है, उसके अन्दर हवा-पानी पहुँचकर रासायनिक परिवर्तन लाते हैं और तब अंकुर प्रस्फुटित होता है। उसी प्रकार मन के सूक्ष्म आयाम में क्या-कुछ होते रहता है, इसकी जानकारी किसी को नहीं रहती। जानकारी तभी होती है जब वह एक विकार के रूप में प्रकट होता है। और यहीं से मन के साथ हमारा व्यवहार आरम्भ होता है।

हम कहते हैं, 'हमारा मन बेचैन है, उसे शान्त करने के लिए हमें कोई उपाय चाहिए।' हम ध्यान लगाने का प्रयास करते हैं, क्योंकि हमें बताया गया है कि ध्यान करने से मन शान्त हो जायेगा। लेकिन जब तुम ध्यान लगाते हो तब तुम्हें मात्र विकार ही दिखाई देता है, तुम उसके कारण को नहीं देख पाते। इसलिए तुम विकारों के साथ संघर्ष करते जाते हो। विकार बाग-बगीचे में मोथे के समान होते हैं। अगर तुम उन्हें ऊपर से ही तोड़ते हो, जमीन की गहराइयों में जाकर उनकी जड़ों को नहीं उखाड़ते, तो वे बार-बार पनपते रहेंगे। मोथे की जड़ कभी-कभी तीन फीट तक गहरी होती है, उसे निकालने के लिए कठिन श्रम करना पड़ता

है। विकार भी मोथे की तरह है, ऊपर से काट लेने पर वह छोटा तो हो जाएगा, आँखों से शायद दिखेगा भी नहीं और तुम समझोगे कि तुम उससे मुक्त हो गए, लेकिन कुछ समय बाद वही विकार पुन: उग आयेगा।

अगर घर में शान्ति चाहिए तो इसके लिए पति-पत्नी का सम्बन्ध अनुकूल होना चाहिए। झगड़ा होने पर कुछ दिनों के लिए नींद भी चौपट हो जाती है। जब तक समझौता नहीं होता, माहौल में तनाव रहता है। इसी सिद्धान्त को तुम अपने मन पर लागू करो। अपने मन के साथ सम्बन्ध ठीक रखो। मन का विरोध मत करो, मन के साथ विद्रोह मत करो। जब तक तुम मन के साथ समझौता नहीं कर लोगे, संघर्ष और अशांति रहेगी। तुम अपने जीवन-साथी के साथ जीवन के पचास-साठ साल ही बिताते हो, लेकिन अपने मन के साथ तो तुम अपना पूरा जीवन बिताते हो। तो जो चीज तुम्हारे साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक है, उसके साथ अगर लड़ते रहोगे तो शान्ति कैसे पाओगे?

तुम्हारी शान्ति कोई दूसरा व्यक्ति नहीं, तुम्हारा मन ही भंग करता है। न पति कलह का कारण है और न ही पत्नी। कलह का कारण है तुम्हारा अपना मन। तुम दूसरों को दोष देने के बजाय अपने मन का निरीक्षण करो। तुम समझ नहीं पा रहे हो कि आखिर तुम चाहते क्या हो। तुम्हारी नासमझी ही तुम्हारे जीवन के दु:ख, कलह, ईर्ष्या और द्वेष का कारण है। जीवन में जितनी नकारात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं, वे सभी मन के आंतरिक कलह के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

कोई किसी से ईर्ष्या करता है तो क्यों करता है? कोई किसी पर क्रोधित क्यों हो जाता है? कोई किसी से घृणा क्यों करता है? गलती किसी और की नहीं, हमारे अपने मन की है। इसलिए अपने मन को सम्भाल कर रखो, मन से समझौता करो। अपने कर्मों तथा बुद्धि, चित्त और अहंकार के व्यवहार के साथ समझौता कर लेना और उन्हें सुव्यवस्थित करना ही वास्तविक कर्मयोग है। जिस दिन मन के साथ समझौता हो जाएगा, संसार में कहीं अशान्ति और कलह नहीं दिखेगा, न अपने जीवन में, न अपने परिवार में और न अपने समाज में। हम लोगों की परम्परा में हमेशा जोर देकर कहा गया है कि मन को व्यवस्थित करके चलो, उसे स्वतंत्र कभी मत छोड़ो। आजकल मन को बेलगाम छोड़ने की जो आदत बन गई है वह पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है। भारतीय संस्कृति में मन को बेलगाम छोड़ने की छूट कभी नहीं दी गई है, बल्कि हमेशा कहा गया है कि अपने आपको अधिकाधिक संयमित रखो। वाणी, विचार और व्यवहार में संयम बरतो। संयम रखने से मन को छूट नहीं मिल सकती। जब मन बेलगाम चारों ओर घूमता है तब फिर वह अधिकार की खोज करता है। लेकिन जब मन नियंत्रित रहता है, वह अधिकार की खोज नहीं करता, बल्कि कर्त्तव्यों के प्रति सजग होता है, जिम्मेदारी और दायित्व से जुड़ता है।

अहंकार से टक्कर

मनस्, बुद्धि और चित्त के आयाम में कर्मों का सृजन होता है, लेकिन कर्मों की अभिव्यक्ति अहंकार की मदद से होती है। अहंकार ही कर्मों को जन्म देता है क्योंकि अहंकार स्वयं की पहचान है। जीवन में अहंकार की अहम भूमिका रहती है। वही तुम्हारे भीतर राग और द्वेष, आकांक्षा और आवश्यकता, प्रेरणा और पुरुषार्थ जागृत करता है, जिस कारण तुम किसी परिस्थिति को या तो स्वीकारते हो या फिर नकार देते हो।

साधक को वास्तव में अपने अहंकार को सम्भालने में सबसे ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। प्रारम्भिक प्रयास तो अहंकार के साथ ही होने हैं, क्योंकि जीवन में कर्म वहीं से प्रकट होते हैं। उदाहरण के लिए, अभी यहाँ पर मेरा व्याख्यान चल रहा है। अगर मैं सोचने लगूँ कि मैं बहुत अच्छा व्याख्यान दे रहा हूँ तो स्वाभाविक है कि मेरे अहंकार की पुष्टि होगी। ऐसी सामान्य परिस्थिति में भी हमारा अहंकार जुड़ा रहता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में हमारी प्रतिक्रियाएँ अहंकार से ही निर्देशित होती हैं। कोई व्यक्ति तुमसे कोई काम करने के लिए कहता है तो तत्काल तुम्हारे मन में विचार उठता है, 'मुझे ही क्यों कहा जा रहा है? यह मेरे लायक काम तो नहीं है।'

अपने बारे में हम जो दृष्टिकोण रखते हैं वह स्वाभिमान कहलाता है। स्वाभिमान भी अहंकार की ही अभिव्यक्ति है। जो लोग बहुत स्वाभिमानी होते हैं उनका अहंकार भी उतना ही बड़ा होता है। और जिन लोगों में आत्महीनता का भाव होता है वे अहंकार के निम्न, नकारात्मक पक्ष से जुड़े होते हैं। इसलिए जब हम भौतिक स्तर पर कर्मयोग में संलग्न होते हैं तो सबसे पहले अपने अहंकार से टक्कर होती है।

मान लो तुम आश्रम में नए-नए आए हो और यहाँ पर कोई तुम्हारे हाथ में झाड़ू थमाकर सड़क की सफाई करने को कहता है। तुम्हें यह पसंद नहीं आएगा। तुम

सोचोगे, 'मुझे झाड़ू लगाने के लिए क्यों कहा जा रहा है? क्या ये लोग जानते नहीं कि मैं कौन हूँ? ढेरों नौकर-चाकर मेरे इशारों पर दौड़ते हैं, मेरी कितनी गाड़ियाँ और बंगले हैं, और यहाँ मुझे झाड़ू लगाने के लिए कहा जा रहा है!' तुम इसी उधेड़-बुन में होते हो कि तब तक कोई और व्यक्ति आकर कहता है, 'सड़क की सफाई हो गई तो चलो मेरे साथ। बहुत-सी दरियाँ समेटनी हैं।' तुम सोचने लगते हो, 'आखिर इन लोगों ने मुझे क्या समझकर रखा है? मैं इनका नौकर हूँ?' यह प्रतिक्रिया कहाँ से आ रही है? अहंकार से।

अपने अहंकार से टक्कर लेना हाथी से लड़ने के समान है। हाथी को पछाड़ने का प्रयास करोगे तो तुम्हीं मारे जाओगे। लोग कहते हैं कि अहंकार का नाश करो। लेकिन जब तक तुम्हारा यह शरीर है और जब तक तुम विषय-भोगों की ओर आकर्षित होते हो, तब तक यह सम्भव नहीं। यहाँ तक कि एक संन्यासी भी अहंकार के प्रभाव से मुक्त नहीं, वह भी कुछ-न-कुछ प्राप्त करना चाहता है। यह अहंकार ही है जो मनुष्यों को कर्म के बंधन में जकड़ता है। सभी मनुष्यों ने स्वयं को बांध रखा है और अब इस बंधन से मुक्त होना चाहते हैं। पहले अपने आपको अहंकार से मुक्त करो, तब तुम अपने आप दु:ख, परेशानी और माया से मुक्त हो जाओगे।

विनम्रता

अहंकार कुत्ते की उस पूँछ की तरह है जिसे कभी सीधा नहीं किया जा सकता। उसे सीधा करने का उपाय है, एक झटके में काट देना। सीधा करने में वर्षों का समय क्यों बर्बाद करना, तलवार लो और सीधे अहंकार का सिर उड़ा दो। यह तलवार क्या है? विनम्रता। एक बार विनम्रता को जीवन में अपना लोगे तब अहंकार अपने आप शांत हो जाएगा और तुम स्वयं को एक भारी विपत्ति से बचा लोगे। ध्यान के अभ्यास से तुम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। ध्यान के माध्यम से तुम अपने अहंकार के द्रष्टा अवश्य बन सकते हो, उसके कारण और स्वभाव को समझ सकते हो, लेकिन उसे बदल नहीं सकते। उसके रूपान्तरण के लिए तुम्हें विनम्रता को अपनाना होगा।

एक बार महात्मा बुद्ध के सामने खड़े होकर एक आदमी ने उन्हें चुन-चुन कर गालियाँ दीं। महात्मा बुद्ध चुपचाप सुनते रहे। उस आदमी के चुप होने पर महात्मा बुद्ध उससे पूछते हैं, 'क्या तुम्हारी बात खत्म हो गई या और कुछ बोलना है?' उस आदमी ने कहा, 'मुझे जो कुछ बोलना था मैंने बोल दिया।' बुद्ध कहते हैं, 'अब मैं तुमसे एक प्रश्न करता हूँ। यदि कोई तुम्हें उपहार दे और वह उपहार तुम्हें नहीं चाहिए तो तुम क्या करोगे?' उसने कहा, 'जब मुझे उस उपहार की आवश्यकता नहीं तो मैं उसे क्यों रखूँगा? उसे वापस लौटा दूँगा।' बुद्ध कहते हैं, 'ठीक है, तुमने मुझे यह जो उपहार दिया है, मैं भी इसे रखना नहीं चाहता। ये सब गालियाँ वापस तुम्हें लौटाता हूँ।' वह आदमी निरुत्तर हो गया।

यदि तुम्हारा किसी से झगड़ा हो जाए, दूसरा व्यक्ति तुम्हें गालियाँ देने लगे, तो तुम बस उन्हें स्वीकार मत करो। तुम भी उसे गाली देने लगोगे तो विवाद बढ़ेगा ही। शालीनता के साथ पीछे हट जाओगे तो तुम्हारा मन शान्त रहेगा। कब भिड़ना चाहिए और कब पीछे हटना चाहिए, इतनी विवेक-बुद्धि तो मनुष्य को होनी ही चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द जी का प्रशिक्षण

आश्रम तुम्हारी व्यक्तिगत सुविधा के लिए नहीं बना है। यह तो सबके लिए है। यह जीवन की कुछ विशेष परिस्थितियों से तुम्हारा सामना कराता है, मुठभेड़ कराता है। चाहो तो उन्हें स्वीकार करो, उन्हें समझने-सम्भालने का प्रयास करो या फिर नकार दो। अगर तुम इस मानसिकता के साथ आश्रम में आते हो कि 'मैं अपनी योग कक्षा में जाऊँगा, उसके बाद अगली कक्षा तक अपने कमरे में बैठकर ध्यान करूँगा, मेरे सभी काम दूसरे लोग कर देंगे,' तब फिर तुम्हारे लिए आश्रम में कोई जगह नहीं। आश्रम आते हो तो अपने स्वभाव को जानने के प्रयोजन से आओ।

मुंगेर में आश्रम की शुरुआत बहुत छोटे स्तर से हुई थी। आज तुम यह आश्रम देखकर भले ही कहो, 'वाह, कितना सुन्दर स्थान है यह!' लेकिन तुम नहीं जानते कि हम यहाँ किस प्रकार रहा करते थे। जब हम पहली बार आश्रम आए तब हमारे पास अपनी चीजों को रखने तक के लिए स्थान नहीं था। हम खुले आसमान के तले सोया करते थे, चाहे जाड़े का मौसम हो या बरसात। बरसात के दिनों में हम सोने के लिए अपने सिर पर प्लास्टिक की चादर डाल लिया करते थे। हमारे पास भोजन तक के लिए पैसे नहीं थे। मेरे जैसे कुछ संन्यासी बाजार जाते थे और वहाँ सड़क पर फेंके गए सब्जी के पत्तों को बोरे में इकट्ठा कर आश्रम में लाया करते थे। उसमें से सड़े-गले पत्तों को निकाल कर, हरे पत्तों को साफ कर, उन्हें पकाकर खाया करते थे। यदि कभी नमक रहता तो वह भोज कहलाता। आज उस जीवन की कोई कल्पना कर सकता है? हमारे जीवन में आसान परिस्थितियाँ नहीं, कड़े संघर्ष रहे। सन् 1963 से 1982 तक हमारा परिवेश एकदम साधारण था। जब सन् 1982 में हम पुराने आश्रम से गंगा दर्शन में आए तब हमारी जीवनशैली बदली।

इन प्रतिकूल परिस्थितियों ने हमें अपने आप का अवलोकन करने, अपने स्वभाव को जानने-समझने का अवसर दिया। हर दिन हमें अपनी निम्न बुद्धि, निम्न मन, निम्न स्मृतियों और निम्न अहंकार की प्रबल पकड़ का अहसास होता था। हमें उनका डटकर सामना करना पड़ता था और चूँकि हम उनका सामना कर सके, इसलिए आज हम यहाँ बैठे हैं। इसलिए नहीं कि हम ने आठ-आठ घण्टे तक ध्यान का अभ्यास किया है। मेरी उपलब्धियाँ ध्यान का परिणाम नहीं हैं। वे इस वजह से हैं कि मुझे मन में उत्पन्न हो रही विभिन्न अवस्थाओं का सामना करना सिखाया गया। मैंने यही व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। और यही कर्मयोग का मार्ग है।

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'गीता दर्शन' से उद्धृत

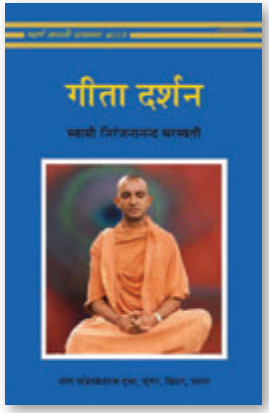

गीता के इस मंत्र में श्रीकृष्ण अर्जुन को मन और बुद्धि निवेश का निर्देश देते हैं। मन और बुद्धि, दोनों को मुझमें लगा दो, मुझे अर्पित करो। इसके बाद *'निवसिष्यसि मय्येव'*, मुझमें ही समाहित होकर तुम मुझमें ही निवास करोगे। इसमें कोई संशय नहीं है।

प्रभु का निर्देश है कि अपनी चित्तवृत्तियों को भली-भाँति समझकर, उन्हें एकाग्र कर स्वयं को मुझमें स्थिर कर दो। मेरे अतिरिक्त, अर्थात् ईश्वर प्रणिधान के अतिरिक्त किसी अन्य विषय का चिन्तन मत करो। ईश्वर प्रणिधान की स्थिति मन, बुद्धि, भावना, कर्म आदि समस्त अवस्थाओं में समान रूप से अनुभूति की स्थिति होती है। अगर कर्म समर्पण को या भावनात्मक एकाग्रता को ही ईश्वर प्रणिधान माने और शेष अवस्थाओं में वह स्थिति न हो, तो ईश्वर प्रणिधान कैसा? इसलिए कर्मों के साथ-साथ मन और बुद्धि को भी ईश्वर को अर्पित करना है ताकि ईश्वर प्रणिधान की परम अवस्था को जीवन में अवतरित किया जा सके।

प्रत्येक प्राणी यह भली-भाँति समझता है कि जब कोई वस्तु प्राप्य समझी जाती है, तब उसकी ओर या उसे पाने हेतु मनुष्य आकृष्ट होता है, पर जो अप्राप्य है, उसमें आकर्षण नहीं होता। मन और बुद्धि को ईश्वर में लगाने का तात्पर्य ईश्वर को प्राप्य समझना है, ताकि इन्द्रियों का आकर्षण ईश्वर की ओर हो और मनुष्य उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे।

पहले कहा गया है कि भक्ति भाव को धारण कर स्वधर्मरूपी कर्म करो, तथा कर्तृत्व भावना का त्याग करो। अगर मन इतने सब के बाद भी ईश्वर में केन्द्रित नहीं होता, तब प्रयास करना है कि मन और बुद्धि, विचार और धारणा सभी ईश्वर में रम जायें। जब मन और बुद्धि को किसी एक वस्तु, पदार्थ, विचार या धारणा में हम लगा देते हैं, तब वह ध्येय बिन्दु मानसपटल पर धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है। उसकी धारणा सहज हो जाती है और उस ध्येय बिन्दु की प्राप्ति सम्भव हो जाती है। अगर हमारे मन में यह धारणा प्रबल हो जाए कि प्रभु को प्राप्त करना सम्भव है, तब स्वत: हम उनकी ओर खिंचते चले जायेंगे। लेकिन अगर पहले से ही यह निश्चय हो जाए कि ईश्वरानुभूति सम्भव नहीं है, तो हमारा ध्यान उस ओर जायेगा ही नहीं।

दूसरे प्रकार से भी इस बिन्दु को समझाया जा सकता है कि अपने मन और बुद्धि, दोनों को अपने इष्ट के लिए संकल्पित कर दो। एक बार जब मन और बुद्धि संकल्पित हो जाते हैं, तब उनकी क्षमता एवं प्रतिभा पर किसी प्रकार का व्यक्तिगत अधिकार नहीं रहता। फिर वे एक न्यास के रूप में हमारे पास हैं। यह समझ लो कि अगर अपने मन और बुद्धि को इन्द्रियभोग या तर्क-वितर्क तक ही तुम सीमित रखते हो, तो तुम्हारे भीतर द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न होती रहेगी, जैसा आज तक होता आया है, और तुम्हारे लक्ष्य, विचार तथा कर्म कभी स्पष्ट नहीं हो पायेंगे।

मन, बुद्धि और कर्म का एक अटूट सम्बन्ध है। इन तीनों का सम्बन्ध स्विच, तार और बल्ब के सम्बन्ध जैसा है। कर्म बल्ब है, जो प्रकाशित होता है। बुद्धि स्विच है, जिसको हम ऑन-ऑफ कर सकते हैं, तथा जिसके द्वारा विवेक और ज्ञान प्राप्त कर स्वयं को अविद्या के अन्धकार से मुक्त कर सकते हैं। मन या चिन्तन प्रणाली तार है, जो स्विच एवं बल्ब को एक-दूसरे से जोड़ती है। मन, बुद्धि और कर्म को जोड़ने पर उनके भीतर जब विद्युत तरंग प्रवाहित होती है, तब कर्म प्रकाशित हो उठते हैं। विद्युत तरंग के प्रवाहित होने का अर्थ है ईश्वरीय शक्ति का संचरण। मन और बुद्धि में ईश्वरीय शक्ति का संचरण होने पर कर्म परिमार्जित एवं प्रकाशित हो जाते हैं और कर्तृत्व की भावना के बन्धन से जीव को मुक्ति मिलती है।

भारतीय मनीषियों ने जीवन को इस संसार सागर में एक नौका के रूप में देखा है, जिसकी दो पतवारें हैं—मन एवं बुद्धि। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य अपनी जीवनरूपी नौका को इन दो पतवारों के माध्यम से खेता है। यह तो सामान्य बात हुई। आध्यात्मिक जगत् में समर्पण के दौरान जीव अपनी पतवारों को ईश्वर को सौंप देता है, ताकि ईश्वर ही जीवनरूपी नैया को आगे ले जाएँ। *'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय'* का भाव भी यही है कि मन और बुद्धि की बागडोर या पतवार ईश्वर को सौंप दें। उसके पश्चात् 'अब तो दी है नैया नदी में बहा, जा लगी जिस किनारे चले जायेंगे'—इस भावना को अपने जीवन में अवतरित करें। पूर्ण रूप से अगर अपनी बौद्धिक तथा मानसिक क्षमता को समर्पित कर दें, तो अहंकार का समर्पण होता है, बात बन जाती है। यही साकार की विशेषता है। साकार में अगर एक क्षमता को भी समर्पित कर दें, तो बेड़ा पार होता है। अगर दो को अर्पित करें, तब भी बेड़ा पार और यदि सब कुछ अर्पित कर दें, फिर तो कोई संशय ही नहीं। निराकार में प्रयत्न और पुरुषार्थ अधिक है, साकार में केवल समर्पण। पुरुषार्थ के साथ अहंकार रहता ही है, पर समर्पण में वह विगलित होता जाता है।

अर्पण करने के लिए अपने भीतर सामर्थ्य और शक्ति होनी आवश्यक है। मात्र यह सोचना कि मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ, अर्पण की व्याख्या नहीं है। जब तक समान भाव को जाग्रत नहीं किया जाता, उस प्रकार के कर्म नहीं किये जाते, मानसिकता में उस प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह धारणा मात्र बौद्धिक

रहती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए भक्ति और कर्म का ठोस आधार होना आवश्यक है। भक्ति और कर्म दो व्रत या दो संकल्प होते हैं। जो इन्हें अपने जीवन में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करता है, वह सिद्ध कहलाता है। जो इनके विषय में बौद्धिक रूप से चिन्तन करता है, वह सिद्ध नहीं, जिज्ञासु भर है। उसके जीवन में परिणति शेष रहती है। विक्षेपों का सामना उससे नहीं हो पाता है, जिसके कारण मन चंचल हो उठता है।

एक बार हमने अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्दजी से पूछा था कि साधना में विक्षेप के कारण चंचल मानसिक अवस्था को शान्त करने के लिए क्या किया जा सकता है। उत्तर में गुरुजी ने कहा था, 'अन्तर्मन में जब तक स्वार्थ पूर्ति की भावना है, तब तक विक्षेप उत्पन्न होंगे। आत्मसंतुष्टि के लिए कर्म करने से विक्षेपों का निराकरण नहीं होता है। जब तुम कर्म और भक्ति, दोनों को एक-दूसरे में देखोगे तभी ऐसी अवस्था को प्राप्त करोगे, जहाँ पर किसी प्रकार का द्वन्द्व और विक्षेप नहीं होता है। ध्यान में समर्पण और भक्ति का अनुभव होने पर, उसे ही ध्यान की अंतिम अवस्था मत मानो। अगर बीच साधना में कोई तुम्हें उठाकर कहे कि तुम्हें झाड़ू लगाना है, तो उस कर्म को भक्ति का एक व्रत मान कर करो, तभी तुम्हारा जीवन संतुलित हो पायेगा।'

भक्ति और कर्म दो व्रत हैं। कर्म के द्वारा संसार के मिथ्यात्व का अनुभव होता है और भक्ति में संसार के ब्रह्मत्व और सनातनता का आभास होता है। इस संसार के दो रूप होते हैं। एक मिथ्या रूप और दूसरा सनातन सत्य रूप। अगर कोई कहे कि ये दोनों रूप अलग हैं और हमको एक मार्ग पर चलना है, तो यह गलत विचारधारा मानी जायेगी। संसार का मिथ्या रूप और ब्रह्म रूप आपस में वैसे ही घुले-मिले हैं, जैसे भूसी तथा चावल। चावल को निकालने के लिए भूसी को हटाना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार जीवन में ब्रह्मत्व का अनुभव करने के लिए मिथ्यात्व को हटाना पड़ता है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने जीवन में कर्म और भक्ति को बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि संकल्प रूप में, जीवन पद्धति के रूप में ग्रहण करे।

इसीलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि तुम अपने मन को अपना मत कहो, मुझे अर्पित कर दो और लोकहित की भावना से अपना कार्य करते जाओ। सीधी बात तो यह है कि हमारा शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि उन्हीं की धरोहर हैं, अत: उन्हें ही सौंप दो।

आकाश का तारा, धरती का फूल

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा दस वर्ष की अल्पावस्था में रचित प्रथम पुस्तक 'आकाश का तारा, धरती का फूल' (स्वर्णिम संग्रह-1 में पुनर्प्रकाशित) से उद्धृत

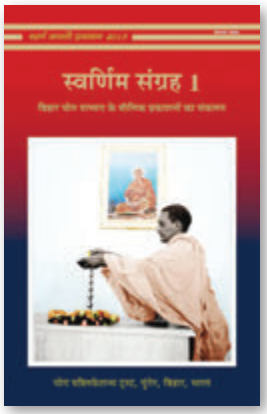

मेरे गुरुदेव, विश्व विख्यात स्वामी सत्यानन्द सरस्वती सर्वप्रथम सन् 1956 में 6 जून को राजनाँदगाँव पधारे थे। उस समय मेरे पिता जी स्थानीय कपड़ा के मिल में बड़े बाबू थे। स्वामी जी जब भी आते, हमारे निवास स्थान में ही रहते; कई दिन और कभी-कभी कई महीने भी। मिल के ऑफिसर, मातायें और बच्चे दिनभर आते रहते और हमेशा सत्संग होते रहता था। पता नहीं, किस महान् भावना से प्रेरित होकर अम्मा जी ने स्वामी जी के एक-एक शब्द को नोट करना शुरू किया। अम्मा जी की अलमारी में कितनी ही नोट बुक हैं, जिनमें स्वामी जी ने अपने बारे में जो कुछ बताया है, उन्होंने अपने हाथों से जो भी लिखा है, संस्मरण, लेख, कविता, वगैरह, उनके पत्रों के संग्रह, प्रवचनों का संग्रह—सब कुछ है।

मैं छोटा था तो कहानी के नाम पर अम्मा जी पूज्य स्वामी जी की ही बातें बताया करती थीं, और सब शैतानी भूलकर मैं उसको रटता रहता था। दादा जी कहते, निरंजन, तुम तो टेप रेकार्डर हो, इन्हीं बातों को दुहराते रहते हो। जब मैं चार वर्ष का था, पढ़ना शुरू किया, तो अम्मा जी की डायरी, नोट बुक, पत्र वगैरह सब निकाल लेता, और एक-एक शब्द पढ़ते रहता। अम्मा जी स्नेहवश मुझे कुछ नहीं कहतीं पर ध्यान रखतीं कि एक भी कागज गड़बड़ न हो। जब मैंने लिखना सीखा, अम्मा जी को लिखते देख मैं भी लिखने बैठता। अम्मा जी बतलाती जातीं और मैं छोटे-बड़े, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखता और अम्मा जी उसे संभाल कर रख लेती थीं। इस तरह मेरे लिखने का श्री गणेश हुआ। मैं पूछता, 'अम्मा जी, इन सबका क्या करोगी?' तो वे कहतीं, 'निरंजन, तुम बड़े होकर एक बिल्डिंग बनवाना। नाम रखना *'सत्यधाम'*। उसके कमरे में स्वामी जी के सभी चित्रों, पुस्तकों, पत्रों व लेखों के संग्रह को म्यूज़ियम जैसा सजा देना, वहीं पर मेरे भी सब लेखों को रख देना। यह तो स्वामी जी का जीवन चरित्र ही है। तुम्हारे लिये तो यह *'गुरु गीता'* है।'

'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती—एक साक्षात्कार' नामक पुस्तक छपने के बाद अम्मा जी मुंगेर आईं तो मुझसे बोलीं, 'निरंजन, मेरे पास भी स्वामी जी के बारे में बहुत सामग्री है, उसे इसी तरह छपाना चाहिये क्या?' मुझे बड़ी खुशी हुई। अम्मा

जी ने स्वामी जी से छपाने की आज्ञा चाही। पूज्य स्वामी जी ने कहा, 'हमसे क्यों पूछते हो जी, आप लोग चाहो तो जरूर छपवाओ।' 9 अगस्त को स्वामी जी के साथ राजनाँदगाँव आया, तो फिर से अम्मा जी की अल्मारी की तलाशी ली। सब लेखों को देखा, पढ़ा और बाल सुलभ चंचलता कहिये कि अम्मा जी से बोला, 'आप पहले मेरा वाला लेख तैयार कीजिये। मेरी बातें मेरे नाम से, आपकी बातें आप के नाम से तैयार कीजिये।' पिता जी से भी कहा, 'मेरी वाली पुस्तक पहले छपाइये।' दादा जी ने कहा, 'सब तुम्हारा ही तो है भाई। दोनों तुम्हारे नाम से छपा दें?' मैंने कहा, 'एक में मेरा, एक में अम्मा जी का नाम रहेगा।' वैसे दोनों परिचय-माला के रूप में एक-दूसरे के पूरक ही होंगे।

मुझे आशा है पूज्य स्वामी जी के भक्त, शिष्य और परिचित इस पुस्तक को पसन्द करेंगे और इससे लाभ उठावेंगे। यह तो मेरा प्रथम प्रयास है। प्रभु मुझे शक्ति दे कि मैं इसी तरह के अनमोल ग्रंथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकूँ। यह पुस्तक अपने दिग्विजयी गुरुदेव के कर कमलों में समर्पित करता हूँ, 108 मणियों को तेजोमय बनवाकर, विश्व को उजागर मानवता देने के उपलक्ष्य में। देव, यह तो तुम्हारी ही सम्पदा है, तुम्हीं हो लिखने वाले, तुम्हारी चीज तुम्हें ही स्वीकार करनी होगी!

जादू जो सिखलाया नहीं जाता

सुनिये, अक्टूबर 1963 की एक सच्ची घटना बतलाऊँगा। मुंगेर आश्रम बनना प्रारम्भ हो चुका था। 19 जनवरी 1964 को अखण्ड ज्योति प्रज्वलित कर परमहंस पद पर आसीन होकर तीन वर्ष तक आश्रम से बाहर नहीं निकलने की योजना भी स्वामी जी ने बना डाली थी। उनके परिव्राजक जीवन का अन्तिम वर्ष था, इसलिये उनके सब

परिचितों ने अपने-अपने शहर में प्रोग्राम बनाया था। राजनाँदगाँव में पाँच दिन का प्रोग्राम था। उस समय मैं चार वर्ष का था। स्वामी जी कहते, 'निरंजन, अब हम नहीं आयेंगे। तुम मुंगेर आना, फिर हम समाधि लेंगे।' मैं बहुत खुश होता और कहता, 'स्वामी जी समाधि लेकर निरंजन बन जायेंगे, तब मैं सत्यानन्द बन जाऊँगा।' दिनभर लोग आते रहते थे, प्रसाद बंटता था। सुबह से मंत्र लेने वालों की भीड़ लगी रहती।

एक दिन की बात है। विनोद चाचा के यहाँ भोजन और दोपहर में महिलाओं का सत्संग था। स्वामीजी उनके यहाँ दस बजे गये थे। हम लोग भी गये। इच्ची (रत्ना) एम.ए. फाइनल में थी। उन्होंने कहा, 'मुझे पढ़ाई करनी है, इसलिये नहीं जाऊँगी।' बारह बजे मीना दीदी आकर ले ही गई कि खाकर आ जाइये, रुकियेगा नहीं। स्वामी जी भोजन के बाद एक घंटे के लिये ताराबेन के यहाँ गये। वहाँ से थोड़ी-थोड़ी देर के लिये दो जगह जाकर, दो बजे वापस उसी महिलाओं के सत्संग में आना था। एक बजे इच्ची भारती को लेकर घर जाने लगी तो मैं भी साथ हो लिया।

हमारा मकान काफी बड़ा था, सामने बरामदा व दोनों तरफ कमरे थे। इच्ची ने ताला खोला। मैं जल्दी से अन्दर अपनी पुस्तक लेने दौड़ा तो देखा बड़े कमरे में स्वामी जी सोये थे। मैं चिल्ला पड़ा, 'इच्ची, स्वामी जी हैं!' रत्ना और भारती स्वामी जी को देखकर घबरा गईं। दरवाजे का ताला तो हमने खोला, आप कैसे अन्दर आये! स्वामी जी हँसकर कहने लगे, 'अभी किसी से नहीं कहना। सत्संग में लोग बेकार बातें करते हैं, अपने स्वार्थ की। हमने सोचा चुपचाप जाकर सोयेंगे।'

महिलायें रास्ता देखते-देखते थक गईं। 3 बजे काकी ने पेट्रोल पम्प में नौकर भेजा। विनोद चाचा मिल दौड़े दादा जी के पास। 4 बजे अम्मा जी घर आईं, सब बातें सुन कर कहा, 'देखा मनुवा, स्वामी जी के लिये कोई काम कठिन नहीं है।' फिर पेट्रोल पम्प और मिल में दादा जी को फोन किया कि स्वामी जी यहाँ हैं।

मुझे बाल मंदिर जाना अच्छा नहीं लगता था, वहाँ गाना सिखाते *'लिटिल बेबी सो जा... /'* छोटे-छोटे बच्चों से खेलना भी अच्छा नहीं लगता था। मेरे दोस्त थे पड़ोस के बड़े-बड़े लड़के, दादा जी के दोस्त, मिल के क्लर्क और बाबू। मैं समझता ये लोग मेरे मित्र हैं, मैं भला छोटे-छोटे बच्चों से क्यों खेलता।

मैं सोचने लगा, अगर स्वामी जी मुझे भी सिखा दें बन्द दरवाजे से अन्दर आना तो कितना अच्छा हो! दादा जी मिल में रहते, अम्मा जी घर का काम करतीं, प्रेस का काम भी देखतीं, इच्ची पढ़ाई करती, नोट्स लिखती रहती, और मैं बाल मंदिर जाता और चुपके से कमरे के अन्दर आता ... और आराम से सो जाता।

स्वामी जी से कितनी बार कहा, 'ऐसा जादू मुझे भी बतलाइये न,' लेकिन स्वामी जी केवल हँस देते थे। मैं कहता, 'अम्मा जी व दादा जी को पता न चले, चुपचाप बता दीजिये न स्वामी जी', तो वे और हँसते थे। फिर कहने लगते, 'निरंजन, यह सब बताया नहीं जाता, तुम्हें एक दिन खुद मालूम हो जावेगा।'

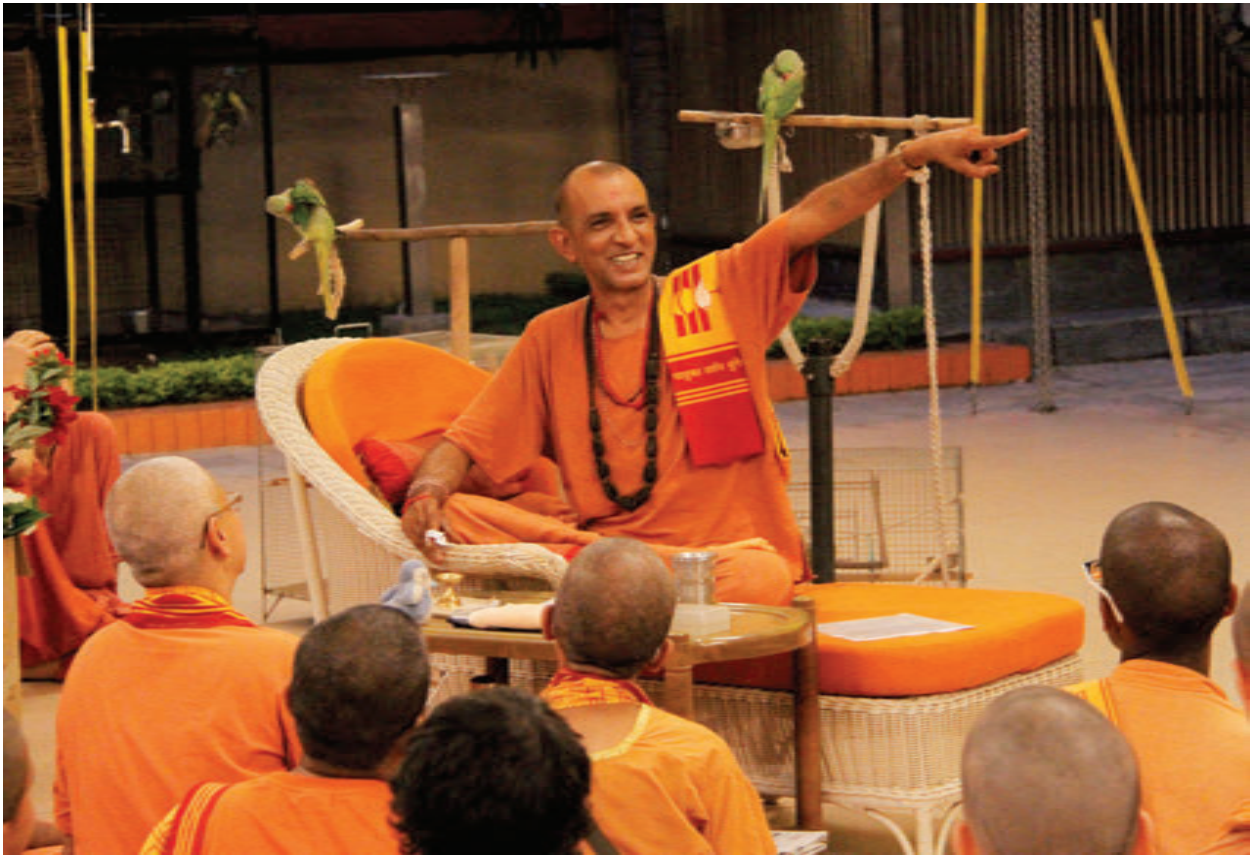

स्वामी जी के साथ ऋषिकेश यात्रा

सन् 1968 अप्रैल में विदेश जाने के पन्द्रह दिन पहले स्वामी जी अपने गुरु जी की समाधि के दर्शन करने तथा उनसे आशीर्वाद लेने ऋषिकेश गये थे। 9 माह के योग टीचर ट्रेनिंग वाले विद्यार्थी भी थे, मैं व अम्मा जी भी थे। हम लोग 3 अप्रैल की शाम को ऋषिकेश पहुँचे। एक बस खड़ी थी जो हम सबको आश्रम तक ले गई। वहाँ नई बिल्डिंग में हमें ठहराया गया। सब सामान रखकर, स्नान वगैरह से निवृत्त होकर, हम सब स्वामी जी के साथ गये अन्नपूर्णा में। पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती तो विदेश गये हुये थे, देखभाल स्वामी कृष्णानन्द जी करते थे।

हम लोग भोजन के बाद पूज्य स्वामी शिवानन्द जी की समाधि के दर्शन के लिए गये। फिर विश्वनाथ मंदिर और फिर स्वामी कृष्णानन्द जी की कुटिया में। मैं स्वामी जी के साथ ही रहता था। सबकी आँखें मेरे ऊपर लगी रहती थीं, सभी मुझे आश्चर्य से देखते थे। स्वामी जी सब का परिचय देते थे, पर मेरे लिये कहते, यह अपना परिचय स्वयं है, इसी से पूछो। स्वामी कृष्णानन्द जी ने पूछा, 'भाई, तुम्हारा नाम क्या है?' मेरे मुँह से स्वामी जी के ही शब्द निकले—जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन सरस्वती। स्वामी कृष्णानन्द जी ने कहा, 'ओ भाई, इतने बड़े नाम से तो हम डर गये!'

फिर हमने स्वामी सत्यानन्द जी की पुरानी कुटिया देखी। हम लोगों को स्वामी जी पुरानी बातें बताते जा रहे थे। हम लोग विश्वनाथ मंदिर गये। उस दिन स्वामी सत्यानन्द जी के सम्मान में विशेष सत्संग हुआ। स्वामी कृष्णानन्द जी, स्वामी माधवानन्द जी, एक अमेरिकन स्वामी जी और माता हृदयानन्द जी ने प्रवचन दिया, फिर स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने आश्रम जीवन की झाँकी बताई।

4 तारीख की सुबह हम लोग प्रेस देखने गये। प्रेस में मुझे बहुत दिलचस्पी है, क्योंकि राजनाँदगाँव में मेरा भी एक 'योग विद्या प्रेस' है। प्रेस देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। एक कम्पोजिटर है सेवकराम, जिसने मुझे सब दिखाया। स्वामी जी ने भी कम्पोज़ कर के सब को बताया। वहाँ की सब मशीनें इंग्लिश मॉडल हैं। स्वामी जी ने हमें एक नई मशीन दिखाई जिसमें प्रिंटिंग, कटिंग, फोल्डिंग होकर निकलता है। मैंने सोचा, दादा जी से कह कर ऐसी ही मशीन योग विद्या प्रेस के लिये भी मंगवाऊँगा।

फिर हम बड़े स्वामी जी की कुटिया में गये। वहाँ सभी को विशेष अनुभूति हुई। उनका आसन, कुर्सी, बिस्तर, ध्यान की जगह, टाइप राईटर, पुस्तकें—सब हमें दिखाये गये। ऐसा लगता था कि स्वामी शिवानन्द जी कहीं से आते ही होंगे। स्वामी सत्यम् सब को बता रहे थे अपने गुरुदेव की बातें, पर मेरी आँखें देख रही थीं कि कभी उनकी आँखें चमक जाती हैं, कभी कुछ ढूँढने लगती हैं, कभी गला भर आता है, कभी कुछ सोचने लगते हैं। अचानक मुझे लगा कि स्वामी जी, शिवानन्द जी बन गये हैं और मैं सत्यानन्द जी बन गया हूँ। स्वामी जी मुझसे कह रहे हैं, 'ओ स्वामी सत्यानन्द जी, पुस्तकें सब को दीजिये,' और मैं चौंक पड़ा ...

दिव्य ज्योति

6 तारीख की सुबह तीन बजे कई लोग हरिद्वार गये। अम्मा जी वगैरह ने सोचा हम लोग वहीं चल कर स्नान करेंगे। मैं भी चलने लगा तो अम्मा जी ने मना किया। मैं नहीं माना तो उन्होंने सहेलियों को जाने दिया, बोलीं, काफी ठण्ढी हवा है, मैं निरंजन को लेकर एक घंटे बाद आऊँगी नहाने। मैंने नहाने जाने को बहुत कहा तो वे मुझे शॉल ओढ़ाकर बोलीं, 'चलो घूमेंगे।' हम लोग गंगा किनारे घूमते-घूमते बड़े स्वामी जी की कुटिया की तरफ चले गये। उधर गहराई व चट्टान के कारण नहाने वाले नहीं रहते।

मुझे बातें व कहानी सुनने का बहुत शौक है। कुछ-कुछ पूछते जा रहा था। कुटिया की ओर गंगा किनारे सुनसान में मुझे उजाला-सा लगा। मैं जल्दी से आगे बढ़ा और वापस आकर बोला, 'अम्मा जी, वहाँ बड़े स्वामी जी की ज्योति है, जल्दी चलिये,' और हाथ पकड़ कर दिखाया, 'यह देखिये।' अम्मा जी ने धीरे से कहा, 'ये बड़े स्वामी जी नहीं, अपने स्वामी जी हैं, ध्यान कर रहे हैं।' फिर वापस आकर उन्होंने बताया, 'कई बार मंत्र देते समय बड़े स्वामी जी के चेहरे से ज्योति इसी प्रकार निकलती थी। स्वामी जी अपने गुरु का ध्यान कर रहे होंगे, और यह ज्योति ध्यान की होगी या गुरु जी के आशीर्वाद की होगी।'

अम्मा जी ने आगे कहा, 'गुरु और शिष्य, दोनों ही महान् हैं। गुरु जी का शरीर समाधि में है, पर उनकी आत्मा उनके शिष्यों में ओतप्रोत है और उनके मार्ग में ज्योति बिखेरती, उनके पथ को आलोकित कर रही है।' मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बस स्वामी जी और ज्योति ही दिखते थे। अम्मा जी से पूछते ही जा रहा

था। अम्मा जी ने बताया, 'सन् 1959 के मई महीने में, तुम्हारे भगवती चाचा के गाँव में हम लोगों का साधना कैम्प लगा था। हम सात लोग थे। 4 बजे सुबह से हमारी साधना शुरू होती थी। एक बड़े कमरे में ध्यान का क्लास लगता था। एक दिन सुबह करीब साढ़े चार बजे मुझे ध्यान में अजीब-सी अनुभूति हुई। मैंने घबराकर आँखें खोलीं तो स्वामी जी के शरीर से ज्योति निकल रही थी। जैसे अभी तुमने देखा है, वैसे ही ज्योति। मैं देखती ही रही, कब बन्द हो गई, मुझे पता ही नहीं चला। उसके बाद ध्यान में कई दिनों तक नहीं बैठ सकी और अपना पुरश्चरण भी पूरा नहीं कर सकी।'

उसके बाद स्वामी जी जुलाई में बांधा बाजार गये। वहाँ सेठ बलभद्र जी के बगीचे में चातुर्मास करने की बात तय हुई थी। तुम्हारे दादा जी और मैं गुरु पूर्णिमा के दिन सुबह बस से बांधा गये। हम पूजा का सामान और प्रसाद ले गये थे। देहाती नदी, कच्ची सड़क, बस धीरे-धीरे गई। कई जगह रुकी भी। हम लोग 11 बजे के बाद बांधा पहुँचे। बगीचे में जाकर कुटिया का दरवाजा खटखटाया। वहाँ स्वामी जी ने दो माह की विशेष साधना शुरू की थी। सुबह से शाम तक एकान्त और साधना, शाम को हल्का फलाहार-सा भोजन, फिर सत्संग। उस दिन सुबह से ही दरवाजा बन्द था। आवाज सुनकर स्वामी जी दरवाजा खोल कर बोले, 'हम जानते थे आप लोग आयेंगे। पर बड़ी देर कर दी। क्या भोजन करके आ रहे हैं?' तुम्हारे दादा जी बोले, 'स्वामी जी, पहले पूजा, फिर प्रसाद लेंगे। हम लोग सुबह से चले हैं।'

स्वामी जी बोले, 'आप लोग कितनी पूजा करेंगे! अच्छा चलिये, यह जो छोटी-सी पहाड़ी है, वहाँ हनुमान जी का मन्दिर है, वहीं एकान्त में बैठेंगे।' फिर हम तीनों ऊपर गये। हमने पूजा की। स्वामी जी आँख बन्द करके बैठे थे। ऐसा लगा कि वे ध्यान में हैं। हम लोगों ने भी ध्यान करना चाहा, पर मेरी आँखें बंद नहीं हो रही थीं। ऐसी ही ज्योति निकली। मैंने तुम्हारे दादा जी को भी दिखाया। देखते-देखते ऐसा लगा कि वह ज्योति हम लोगों की तरफ बढ़ रही है। मैं घबरा गई। आँखें बन्द हो गईं, फिर भी तेज सहन नहीं हो रहा था। मैंने दोनों हाथों से आँखों को दबा लिया। जब तन्द्रा टूटी, तुम्हारे दादा जी कह रहे थे, 'पानी ले आओ और स्वामी जी को परोसो।' मैंने आँखें खोलीं तो स्वामी जी हँस रहे थे। जरा देर बातें कीं, फिर वापस राजनाँदगाँव आ गये।'

मैंने पूछा, 'मैं कितना बड़ा था उस समय?'

अम्मा जी ने हँसते हुए कहा, 'निरंजन, स्वामी जी शायद तुम्हें ही ढूँढ रहे थे उस ज्योति में। यह बात है जुलाई 1959 की, और तुम्हारा जन्म है फरवरी 1960 का।'

स्वामी जी का उज्ज्वल चरित्र

आज स्वामी जी को कौन नहीं जानता! स्वामी जी अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मंडल के संचालक एवं प्रेरक हैं। उनका लक्ष्य यौगिक अच्छाइयों को मानव मस्तिष्क में प्रवेश कराना है। वे योग के दुराग्रह एवं अज्ञान के किले को तोड़ना चाहते हैं। यह उनका पुराण शास्त्र में जकड़े हुए योग के विरुद्ध धर्मयुद्ध है। महल से लेकर झोपड़ी तक, देश-विदेश के कोने-कोने में उनकी आवाज पहुँच रही है। मैं सोचता हूँ कि शायद भगवान ने मानव की अज्ञानता पर तरस खाकर, स्वामी जी के रूप में जादू की छड़ी का निर्माण किया, जिसे भगवान स्वयं देश-विदेश में घुमा रहे हैं, और मैं भी अपने को नहीं रोक सका। जादू की छड़ी बनने इस संसार सागर में कूद ही पड़ा। स्वामी जी कहते ही रहे—'राही सोच समझ कर आना।'

मेरी छोटी-छोटी बातें सुनकर लोग हँसेंगे, पर मैं छोटी-छोटी बातों में ही सार तत्त्व बताऊँगा। वैसे तो मेरा जीवन ही स्वामी जी के संस्मरण, साक्षात्कार तथा स्मृति से ओत-प्रोत है, लेकिन मैं सत्यम् रूपी समुद्र में गोते लगाकर, अनमोल व बहुमूल्य रत्नों का संग्रह करूँगा, जिसके प्रकाश में आप सब कुछ पाने में सफल होंगे। स्वामी जी सचमुच अथाह समुद्र हैं। *'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गदरे पानी पैठ।'* जो जैसा चाहे उसी रूप में उन्हें पा सकता है। मेरे लिये तो वे 'सत्यम् माता, पिता सत्यम्, सत्यम् सखा, भ्राता सत्यम्' हैं। मैं उनके साथ खाता हूँ, साथ में सोता हूँ और कभी हम लोग मल्लयुद्ध भी करते हैं। एक बार जनवरी की बात है, स्वामी जी दोपहर में रजाई ओढ़कर सोये थे, मैं भी साथ में सोया था, उन्हें कहानी सुना रहा था। थोड़ी देर में चंचलता वश बाहर जाता, फिर दौड़ते आता, कूदकर बिस्तर पर चढ़ता और रजाई में घुस जाता। कई बार ऐसा ही किया तो स्वामी जी कहने लगे, 'निरंजन, देखो तुम मेरी रजाई धूल भरे पैर से गन्दी करोगे तो मैं भी तुम्हारी रजाई गन्दी कर दूँगा'। मुझे खूब हँसी आई, मैंने कहा, 'आप की रजाई और मेरी रजाई, दोनों आप ही की तो हैं।' वे बोले, 'यह नहीं समझूँगा कि मेरी ही है, मैं तुम्हारी रजाई पैरों में धूल लगाकर जरूर गंदी कर दूँगा!'

मैं हमेशा कल्याण की कहानियाँ पढ़ता था और मेरी दादी भागवत पुराण की कहानियाँ बताती थी। कई जगह प्रसंग आता है, श्रापवश या कार्यवश देवताओं को भी धरती पर जन्म लेना पड़ता है। वे जन्म लेते हैं, मानवीय लीला भी करते हैं। जैसे राजा जनक थे, दुनिया की नजरों में भोगी, पर वे थे यथार्थ में महान् योगी। वैसे ही हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यम् हैं। मुंगेर का योग विद्यालय–शिवानन्दाश्रम क्या राजमहल से कम है! पर वे रहते हैं जमीन के अन्दर छोटे-से कमरे में, जिसे 'अन्डर ग्राउण्ड' कहते हैं।

दूध कितना भी आवे, पर उन्हें चाहिये सिर्फ एक कप चाय, वह भी नींबू की काली चाय। कितना ही भोजन बने पर उन्हें चाहिये एक-दो रोटी, थोड़ी-थोड़ी दाल, चावल, सब्जी। यदि सब चीजों को एक कटोरे में मिलाकर दे दो तो और भी अच्छा। भोजन भी एक बार ही चाहिये। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण, अपने समय और अपनी जगह पर ठीक थे। पर आज के इस कलियुग में, योग को इतने

व्यावहारिक रूप में सर्वसुलभ करके शारीरिक और मानसिक शान्ति रूपी गंगा बहाने वाले स्वामीजी भगीरथ, राम और कृष्ण ही होंगे। उनके साथ रहकर मैंने यही समझा है।

स्वामी जी जो भी बात बतायेंगे या समझायेंगे, पूरे आत्मविश्वास के साथ। उनकी बातें जीवन की अनुभूति हैं, सच्ची अनुभूति। स्वामीजी अटूट आत्मविश्वास से जो भी बात कहेंगे, सुनने वाले के हृदय में अंकित हो जाती है। कोई कैसा भी तर्क लेकर आवे, मन शान्त करके ही जावेगा। प्राचीन ऋषियों के तपोवन का चित्र जिसमें शेर-हिरण और सभी पशु-पक्षी एक साथ ही रहते हैं, उसी का बदला हुआ चित्र देखिये शिवानन्दाश्रम, मुंगेर में। भारतीय और विदेशी, स्त्री और पुरुष, एक साथ साधना करेंगे, एक साथ भोजन करेंगे, थाली धोवेंगे, सुबह तीन बजे स्नान भी करेंगे। योग विद्यालय के अन्दर आप देखेंगे– *'जात पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'*

स्वामी जी के पास अपना और पराया, देशी और विदेशी, स्त्री और पुरुष का भेद है ही नहीं। उनकी आँखें केवल आत्मा को ही देखती हैं। उन्हें निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं। जब वे शिवानन्दाश्रम, ऋषिकेश में थे, उस समय बड़े स्वामी जी की अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद में दिन-रात एक कर देते थे, और अब मानव मन के अनुवाद में दिन और रात लगे रहते हैं। मानव किस तरह जप-ध्यान, आसन-प्राणायाम, भोजन-उपवास, भजन-कीर्तन से अपने शरीर और मन को स्वस्थ और शान्त बना कर आनन्दानुभूति का अनुभव कर सकता है, इसी के प्रयोग में उनका समय लगा रहता है। उनकी इस प्रयोगशाला में बड़े-बड़े डॉक्टर और सिविल सर्जन आश्चर्यचकित होकर आते हैं और सफलता की चाबी लेकर ही लौटते हैं।

योग में कोई भी साधना ऐसी नहीं जो स्वामी जी को सिद्ध न हो। यंत्र विद्या, तंत्र विद्या, मंत्र विद्या, वाक्-सिद्धि, स्पर्श-सिद्धि, दृष्टि-सिद्धि, गन्ध-सिद्धि; और भी जितनी सिद्धियाँ हैं, सब स्वामी जी के चरण चूमती हैं, लेकिन उन्होंने कभी सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं किया। हाँ, जन कल्याण के लिये जरूर प्रयोग करते होंगे, भले ही उन्हें परेशानी क्यों न हो। क्रिया योग जैसी गुप्त साधना को स्वामी जी ने जन-जीवन में सुलभ कर दिया है। जिस साधना को संन्यासियों ने गुफाओं और कन्दराओं में अपने को कैद कर के किया, उसी साधना को स्वामी जी ने हॉल में ज्योति के सामने बैठकर एक साथ सैकड़ों लोगों को सिखाया।

मुझे याद है सन् 1965 में जब मैं पहली बार अम्मा जी के साथ आया था, उस समय स्वामी जी क्रिया योग की दीक्षा क्रिया योग कुटिया नामक फूस की कुटिया में देते थे। अम्मा जी और साथियों को सिखाने के बाद स्वामी जी ने उन लोगों को यह आदेश दिया था कि इस क्रिया का नाम कहीं पर नोट नहीं करना। किसी को न पूछना न बताना। यदि एकान्त न मिले तो चेहरे पर चादर डालकर करना। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने जब स्वामी जी से इस बारे में पूछा तो उन्होंने बताया, 'इस क्रिया

का नियम ही ऐसा है। जब तक स्वामी शिवानन्द जी जीवित थे मैंने किसी को नहीं दिया। 14 जुलाई को स्वामी जी ने निर्वाण प्राप्त किया, उसके बाद ही मैंने क्रिया योग देना शुरू किया है।'

फिर स्वामी जी हँसने लगे। मैंने कारण पूछा, तो उन्होंने कहा, 'कई साधनायें तो मैंने बड़े स्वामीजी से छीन ली थीं।' मैं समझ नहीं सका। तब स्वामी जी ने बताया, 'कुछ साधनायें ऐसी थीं जिन्हें स्वामी जी ने हम लोगों को नहीं बताया था। पर वे अपनी कुटिया में साधना करते थे, और मैं अपनी कुटिया में साधना करता। अपने को उनमें लीन करके उनकी गुप्त साधना को मैं सीख सका था।'

मैंने पूछा, 'स्वामी जी को इसका आभास तो रहा होगा।'

स्वामी जी ने कहा, 'उन्हें सब मालूम था। यदि वे गुप्त विद्या देना नहीं चाहते, तो मेरा कनेक्शन अपने से मिलने ही नहीं देते। शायद उनकी प्रेरणा से ही मेरे मानस की लाइन मिली हो या अपनी शक्ति का मीडियम बनाने के लिये करेन्ट मिलाये होंगे। जैसे-जैसे शिष्य की साधना गहरी होती जाती है, वह गुरु के निकट होते जाता है। गुरु और शिष्य शरीर से दो, पर आत्मा से एक हैं। इस युग में सच्चे गुरु और सच्चे शिष्य बहुत कम हैं। स्वामी जी तो बड़ी शांति से इतने महान् कार्य का श्री गणेश कर गये, पर हमें देखो न, इधर-से-उधर भटकना पड़ रहा है।'

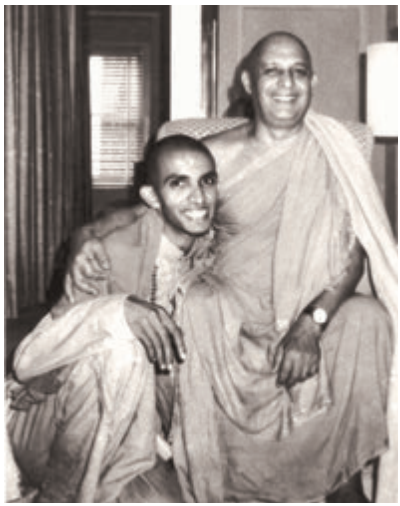

यह कहकर वे हँस पड़े। फिर गंभीर होकर कुछ सोचने लगे। मुझे ख्याल आया, दीवाली के दिन खूब पटाखे चलाये हमने, स्वामी जी बहुत खुश थे। बहुत लोग बैठे थे, किसी ने कहा, निरंजन से आश्रम में बड़ी रौनक हुई। तो स्वामी जी कहने लगे, 'भगवान ने हमें कहा कि तुम्हें बेटा नहीं देंगे, पर चेला तो जरूर देंगे।' मेरे मन में उस समय भावना उठ रही थी कि जैसे शिवम् के लिये सत्यम्, वैसे ही सत्यम् के लिये निरंजन!

सकारात्मक चिंतन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'योग साधना माला-1' से उद्धृत

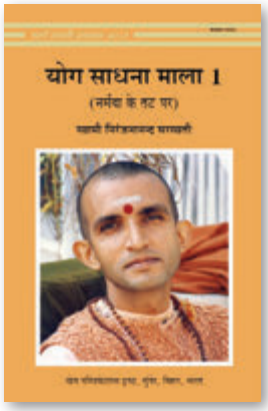

यदि कोई हमसे द्वेष करे और हमारी विचारधारा को न भी समझे तो हम किस प्रकार हमेशा सकारात्मक और सृजनात्मक जीवन बिता सकते हैं?

एक कला होनी चाहिए जीवन में– *'समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानपमानयोः।'* व्यक्ति को मान और अपमान में, शत्रु और मित्र के साथ, तथा हर प्रकार की द्वन्द्वावस्था में स्वयं को संतुलित और अप्रभावित रखना सीखना होगा। हम लोग जीवन की हर परिस्थिति, हर घटना, हर विचार से प्रभावित हो जाते हैं। और जब हम प्रभावित हो जाते हैं, तब हमारी क्षमता क्षीण हो जाती है। हम कोई काम करना चाहते हों, और कोई हमसे कहे कि ए! तुम नहीं कर सकते, छोड़ दो यह काम। तो हम निराशा का अनुभव करते हैं, हमें विषाद घेर लेता है। यह व्यक्ति क्यों मुझे ऐसा कह रहा है। हम कागज पर कुछ अच्छा-सा लिखते हैं, और उसे मेज पर छोड़ देते हैं; कोई व्यक्ति आता है, पढ़ता है और कहता है, किस बेवकूफ ने यह लिख दिया। हमें तुरन्त चोट लगती है कि मुझे बेवकूफ कह रहा है, जबकि यह मेरी इतनी अच्छी कृति है।

प्रभावित होना हमलोगों का स्वभाव है। परिस्थितियाँ हमें प्रभावित कर देती हैं, दूसरे व्यक्ति हमें प्रभावित कर देते हैं, दूसरों के विचार हमें प्रभावित कर देते हैं। जब हम प्रभावित हो जाते हैं तब भूल जाते हैं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या, क्योंकि हम अपने भीतर अपराध बोध को उत्पन्न कर देते हैं। अप्रभावित रहना एक कला है। इस कला को हम अपने जीवन में अपना सकते हैं ध्यान के द्वारा।

सबसे पहले, कौन-सी शक्तियाँ हमें प्राप्त हैं, और हममें कौन-सी कमजोरियाँ हैं, यह बोध हो। शक्ति तथा कमजोरी दोनों को देखते हुए, शक्ति को बढ़ाने और कमजोरी को दूर करने का प्रयत्न हो। अगर आत्मविश्वास की कमी है, तो वह एक कमजोरी है। अगर हम दूसरों से प्रभावित होते रहें, तो वह भी एक कमजोरी है। हम अपना निर्णय खुद नहीं ले सकते, हम खुद अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख सकते। यह तो इसी प्रकार की स्थिति है कि हम दो नावों पर पैर रख कर खड़े हैं। जब कभी दोनों नावें विपरीत दिशा में जायेंगी, तो क्या होगा? हम पानी के अन्दर। तो दो नावों में बैठने से फायदा क्या रहा? एक नाव में बैठो, और समर्पण का भाव रहे।

समर्पण का भाव आंतरिक सरलता का भाव है, इसे भूलना नहीं। आंतरिक सरलता या हृदय की सरलता जब तक हमें प्राप्त नहीं होती, हम समर्पण नहीं कर सकते। इसलिए अपने आपको जानने का प्रयत्न करते हुए, अपने सामर्थ्य और कमी को देखते हुए, दोनों को संतुलित बनाकर चलना और आंतरिक सरलता को धारण करना, तभी जीवन की विविध परिस्थितियों से अप्रभावित रह सकते हो; तभी मान और अपमान, राग और द्वेष, मित्रता और शत्रुता के मध्य सृजनात्मक जीवन बिता सकते हो।

मन एक बल्ब की तरह है। बल्ब जब जलता है तो उसका प्रकाश चारों तरफ फैलता है। लेकिन वही प्रकाश जब एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाता है, तब लेसर किरण का रूप धारण कर लेता है, जो लोहे को भी काट सकती है, और कागज को भी जला सकती है। इसको कहते हैं एकाग्रता, और एकाग्रता के पश्चात् अन्त में आती है ध्यान की स्थिति, जहाँ पर ध्याता, ध्येय और ध्यान की प्रक्रिया एक हो जाती है। यह जो सजगता और जागरूकता की प्रक्रिया है, इसे हम लोग कहते हैं प्रत्याहार। अंतर्मुखी होने के पहले सर्वप्रथम अपनी चेतना का बाह्य जगत् में विस्तार करना चाहिये। मान लीजिए आप नदी में तैरने जाते हैं। यदि आप अच्छे तैराक हैं, तो क्या आँख मूंद कर कूदते हैं नदी में? नहीं। अच्छा तैराक कभी आँख मूंद कर नदी में नहीं कूदता। सबसे पहले वह नदी के सामने खड़ा होता है। नदी की धारा को देखता है, किस ओर धारा है, कहाँ पर भँवर है, कहाँ-कहाँ पर चट्टान है। वह सब कुछ पहले देखता है, और जब उसे उस क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है तब वह तैरने के लिए नदी के भीतर प्रवेश करता है। यह जागरूकता की स्थिति है।

सजगता की इस स्थिति में हम सर्वप्रथम बाह्य जगत् में अपनी चेतना का विस्तार करते हैं; और अपने परिवेश, परिस्थिति तथा परिसर के प्रति सजग हो जाते हैं। और देखते हैं कि कहाँ पर हमारा मन आकृष्ट हो रहा है। हमारे विचार हमें किस दिशा में ले जा रहे हैं। हमारी इच्छाएँ किस तरफ जा रही हैं। हमारी महत्त्वाकांक्षाएँ किस प्रकार की हैं। तभी केन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। मन की विक्षिप्त अवस्थाएँ एक बिन्दु पर केन्द्रित होनी शुरू होती हैं। जैसे-जैसे यह क्षिप्त-विक्षिप्त अवस्था एक बिन्दु पर केन्द्रित होने लगती है, वैसे-वैसे प्रत्याहार की स्थिति और भी प्रगाढ़ होती जाती है। अन्त में जब सभी क्षमताएँ एक बिन्दु में केन्द्रित हो जाती हैं, तो वह है धारणा का अभ्यास। जिस एकाग्र मानसिक अवस्था को हमने धारण किया, उसे कहते हैं धारणा। वही एकाग्र अवस्था मानसिक परिवर्तन करती हुई, हमें ध्यान की अवस्था में पहुँचाती है।

अत: मानसिक आरोग्य, भावनात्मक स्वास्थ्य और विचारों को सकारात्मक एवं सृजनात्मक बनाने हेतु सबसे पहले आँखें बन्द नहीं करनी चाहिये। सबसे पहले चारों ओर एक नजर दौड़ा लेनी चाहिये कि हम किस बिन्दु पर खड़े हैं, या हमारी क्या प्रतिक्रिया हो रही है। यह प्रत्याहार की स्थिति है। इसके पश्चात् ही आगे बढ़ना उचित है।

यही धारणा है जिससे मन में परिवर्तन होता है, और जब इस प्रकार के अभ्यासों से वैराग्य की स्थिति उत्पन्न कर, विवेक की स्थिति में स्वयं को स्थित कर हम विषयाकर्षण से स्वयं को अलग रखने लगते हैं, विषयाकर्षण के प्रति जागरूक हो जाते हैं, तब विचारों में परिवर्तन होता है। विचार सकारात्मक और सृजनात्मक बनते हैं। और ये विचार इतने शक्तिशाली होते हैं कि ये मनुष्य को ही नहीं, समाज तथा संसार को बदल देने में सक्षम होते हैं।

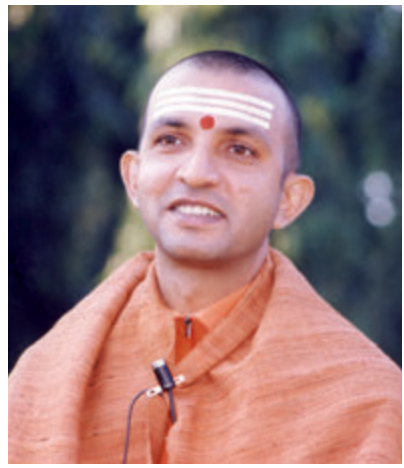

मात्र बौद्धिक ज्ञान के द्वारा हम अपने व्यक्तित्व, समाज और संसार को नहीं बदल सकते; क्योंकि उस ज्ञान का अनुभव तो हमें है नहीं। एक कहानी आती है। एक राजमिस्त्री धन कमाने के लिए दूसरे देश में गया। और वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। उसके एक परिचित ने उसके बेटे को पत्र लिखा कि तुम्हारे पिताजी नदी के बीच में जल कर मर गए। बेटा बड़े असमंजस में पड़ गया कि पिताजी नदी के बीच में कैसे जल गए। उसने अनेक लोगों से इसका मतलब पूछा। पूछा कि नदी के बीच में कोई जला है आज तक? सब ने कहा नहीं, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। जरूर कुछ भूल हुई है। अंत में पिता जी का एक मित्र आया। वह भी कारीगर था। उसने पूछा, क्या हुआ? बेटे ने कहा, ऐसी-ऐसी बात हुई है। पिताजी दूसरे देश को गये थे, वहाँ से चिट्ठी आई है कि तुम्हारे पिताजी नदी के बीच में जल कर मर गए। मित्र ने कहा, यह संभव है। सब आश्चर्यचकित रह गये। कैसे संभव है? नदी के बीच तो आज तक कोई जला नहीं है। कारीगर ने कहा, देखो, वह कच्चा चूना नाव में ला रहा होगा। और कच्चे चूने में नदी का जल पड़ गया होगा। चूने और जल के बीच रासायनिक क्रिया से जो ताप उत्पन्न हुआ होगा, उसी से जलकर मर गया बेचारा। तब कहीं लोगों ने स्वीकार किया कि हाँ, यह संभव है कि वह नदी के बीच जलकर मरा।

एक है अनुभवात्मक-ज्ञान और दूसरा है बुद्धिगम्य-ज्ञान। जब तक ज्ञान के द्वारा हम अपने व्यक्तित्व और विचार को नहीं बदल सकते, तब तक वह अधूरा है। जितने महान् संत हुए हैं, उन्होंने ज्ञान के बल पर नहीं, आत्म-संयम, विचारात्मक-संयम के बल पर ही संसार को परिवर्तित किया है। इसलिए इस बात को याद रखना कि अगर प्रयत्न करना है किसी चीज के लिए तो आंतरिक, मानसिक और विचारात्मक संयम के लिए, ज्ञान के लिए नहीं। और जिस दिन तुम्हें यह प्राप्त हो जाएगा, उस दिन तुम महामानव बन जाओगे।

कर्म संन्यास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'श्रीकृष्ण योग पद्धति' से उद्धृत

गीता के तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं कि जब तुम अपनी इन्द्रियों को वश में करके, विषयों से अनासक्त होकर, समस्त इन्द्रियों की प्रतिभा के साथ कर्म करते हो और मन को स्थिर बना लेते हो, तब तुम्हारे द्वारा जो कर्म सम्पादित होता है, वह कर्मयोग कहलाता है। जिस कर्म में विषयों की आसक्ति नहीं होती, उस कर्म से बंधन की बजाय मुक्ति मिलती है।

हर कर्म में परिपक्वता और पूर्णता को प्राप्त करने का प्रयास करो। कर्म अधूरा नहीं, पूर्ण होना है। यंत्रवत् नहीं बल्कि सजगता के साथ होना है। अगर अपने घर में झाड़ू लगाते हो या कपड़े धोते हो, यह मानकर चलो कि मैं जीवन में यह काम पहली और अंतिम बार कर रहा हूँ। हर काम को बेहतर तरीके से करने का प्रयास करो। इससे कर्म के साथ रचनात्मक प्रवृत्ति जुड़ेगी। जब कर्म के साथ रचनात्मक प्रवृत्ति जुड़ती है, तब वह कर्म कर्मयोग बनता है। जब मनुष्य प्रतिभाओं के साथ युक्त होकर कर्म का संपादन उसके अंतिम चरण तक करता है, तब वह कर्मयोग कहलाता है।

इस कर्मयोग द्वारा जीवन से संताप, ममता और फल की आशा दूर हो जाते हैं। यह कर्मयोग की उपलब्धि मानी गई है। लेकिन यहाँ पर भगवान एक संकेत भी देते हैं कि यह सब करते हुए तुम्हें सावधान रहना है, क्योंकि हर व्यक्ति के भीतर में एक ऐसी प्रवृत्ति रहती है, जो मनुष्य की बुद्धि और विवेक का हरण कर लेती है। इसी प्रवृत्ति को काम कहते हैं।

सामान्य रूप से लोग काम का अर्थ सम्भोग से लगाते हैं। निश्चित रूप से उसका एक अर्थ सम्भोग भी होता है, लेकिन काम की परिभाषा सम्भोग तक ही सीमित नहीं है। काम का मतलब होता है इच्छा में प्रबलता। चाहे वह प्रबलता किसी कामना में हो या किसी इन्द्रिय में या मन में या बुद्धि में या चिन्तन में, जब भी जीवन के किसी अनुभव में प्रबलता का आभास होने लगे, तब उसे काम कहते हैं।

यह काम हर व्यक्ति के जीवन में छिपकर बैठा हुआ है। कहाँ पर? इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि में। इसी काम को भगवान शंकर ने भस्म किया था, पर अब यह अदृश्य रूप में हम लोगों के भीतर विद्यमान है। यह आसक्ति, राग, भय और क्रोध को पीछे से सहारा देता है। इसीलिए श्रीकृष्ण अर्जुन को काम से संभलने की चेतावनी देते हैं।

संन्यास–कर्तापन का त्याग

तब अर्जुन कृष्णजी से पूछता है कि भगवन्, काम को समाप्त करने का कौन-सा सरल उपाय है? भगवान कहते हैं कि काम को समाप्त करने का एक ही उपाय है–संन्यास ले लो। बिना संन्यास लिए इस काम का अंत नहीं होता। लेकिन संन्यास का मतलब क्या? घर छोड़ देना? नहीं। संन्यास का वास्तविक अर्थ होता है, कर्मों में कर्तापन का त्याग। अगर कर्मों में कर्तापन का त्याग हो जाए, तो व्यक्ति संन्यासी है। प्रभु बार-बार संकेत देते हैं कि जब तुम अपने कर्मों को मुझे अर्पित कर दोगे, तब फिर तुम्हारे जीवन में कर्तापन का भाव नहीं रहेगा।

गृह त्यागने को, गेरू वस्त्र धारण करने को या सिर मुड़ाने को ही संन्यास नहीं कहते। यह तो एक अनुशासन है, एक व्यवस्था है। असली संन्यास है जीवन में, कर्मों में कर्तापन का अभाव। यही बात हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी ने हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी को संन्यास देने के समय कही थी।

संन्यास लेने के पूर्व स्वामी सत्यानन्द जी पूछते हैं कि संन्यास लेने के बाद मुझे क्या करना होगा? स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं, 'अभी तक जो करते आए हो, वही करना होगा। तुम झाड़ू लगाते हो, ऑफिस में काम करते हो, चिट्ठी-पत्री का जवाब देते हो, बही-खाता देखते हो, रोज वही करना होगा। तुम रसोई का भी तो काम संभालते हो न? बाजार से सब्जी, अनाज वगैरह लाते हो, वह भी रोज करना होगा।'

स्वामी सत्यानन्द जी ने कहा, 'अगर संन्यास के बाद भी वही सब करना है जो संन्यास के पहले मैं करता था, तो संन्यास का क्या फायदा? बेहतर होगा कि मैं घर लौट जाऊँ। घर में कम-से-कम कुछ व्यक्तियों की देखभाल तो कर सकता हूँ।'

स्वामी शिवानन्द जी ने कहा, 'नहीं। जब तुम घर जाकर कर्म करोगे, तब वहाँ पर कर्म तुम्हें बाँधेंगे। वही काम यदि तुम आश्रम में रहकर करोगे, तब वह कर्म तुम्हें नहीं बाँध सकेगा। जब घर में काम करोगे, तब मन में हमेशा भाव रहेगा कि मैं अपने लिए, अपनों के लिए काम कर रहा हूँ। इससे चिंता, तनाव, परेशानी और संघर्ष रहेगा। सफलता में तुम प्रसन्न हो जाओगे और विफलता में दु:खी। संसार में हर व्यक्ति का जीवन जैसे चलता है, तुम्हारा जीवन भी वैसे ही चलेगा। लेकिन अगर वही काम तुम आश्रम में करोगे, तो तुम्हारे मन में हमेशा यह भावना रहेगी कि मैं जो भी अच्छा या बुरा कर रहा हूँ, उसका परिणाम गुरुजी जानेंगे। मैं तो मात्र सेवा रूप में कर्म कर रहा हूँ, जिसमें मेरी कोई अपेक्षा नहीं, कोई आशा नहीं। इसलिए सब कुछ करते हुए भी तुम कर्म के बंधन से मुक्त रहोगे।'

गुरु-सेवा का महत्त्व

जब कोई जिज्ञासु जीवनचर्या में परिवर्तन के लिए या किसी आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए या संन्यास मार्ग पर चलने के लिए किसी गुरुकुल या आश्रम में प्रवेश लेता

है, तब आश्रम परम्परा कहती है कि बारह साल गुरु-आश्रम में रहकर सेवा करो। परम्परा यह नहीं कहती कि बारह साल गुरु-आश्रम में रहकर ध्यान करो, तपस्या करो। नहीं, सेवा करो। सेवा के क्रम में गुरुजी जो सिखा दें, सो सिखा दें। लेकिन विद्यार्थियों को मूल रूप से बारह साल गुरु के सान्निध्य में रहकर गुरु की सेवा करने की बात कही जाती है।

इसके पीछे यही कारण है कि चेला गलती से भी कर्म से विमुख न हो। जब व्यक्ति संन्यास मार्ग में प्रवृत्त होता है, तब शुरू में सोचता है कि अब तो समाज के किसी भी नियम-कानून से मेरा कोई लेना-देना नहीं। मैं स्वतंत्र हो गया, अब समाज मेरी देखभाल करेगा। और घर-घर भिक्षा, वस्त्र या धन माँगने के लिए चल पड़ता है। सोचता है कि कुटिया बनाएँगे, आश्रम बनाएँगे, साधना करेंगे। लेकिन परम्परा कहती है, 'नहीं, साधना करनी है तो बारह साल के बाद करो।' बारह साल तक सेवा करो, ताकि तुम कर्म के सकारात्मक पक्ष को जान सको और नकारात्मक पक्ष से अपने को मुक्त रख सको। और कालान्तर में यह भाव दृढ़ हो जाए कि *'नाहं कर्ता, हरिः कर्ता, हरिः कर्ता हि केवलम्'*।

कर्म द्वारा आत्मशुद्धि

संन्यास तो कर्मों में कर्तापन का त्याग है और बिना संन्यास के कर्मयोग सिद्ध नहीं होता। मतलब जब तक कर्तापन का भाव रहेगा, कर्मयोग सिद्ध नहीं होगा। जब कर्मयोग करते हो, तब उस समय भी कर्तापन का अभाव रहना चाहिए। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि इस चीज को समझने वाला व्यक्ति देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखों को खोलता और मूँदता हुआ भी यह मानता है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥
प्रलपन्विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन् निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥

कहने का मतलब सामान्य जीवन की प्रक्रियाओं में भी यह अहंकार नहीं होना चाहिए कि मेरे द्वारा यह सब हो रहा है। तुम श्वास ले रहे हो, लेकिन किसके बल पर? तुम सोचते हो कि तुम श्वास ले रहे और छोड़ रहे हो। लेकिन जब तुम सो जाते हो, तब कौन श्वास लेता है? रात को सोते हुए श्वास क्यों नहीं रुकती? शरीर और इन्द्रियाँ अपने कर्मों के अनुसार व्यवहार करते हैं, मन अपने कर्मों के अनुसार काम करता है। इस प्रकार के बुद्धि जनित ज्ञान से कर्तापन की भावना का त्याग करना है।

अर्जुन ने शुरू में श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि स्थिर मति वाला व्यक्ति किस प्रकार रहता, बोलता, खाता, सोता, उठता है। भगवान यहाँ उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह सब कुछ करता है। लेकिन सब कुछ करते हुए भी मानता है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं–

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥5.10॥

जो व्यक्ति अपने कर्मों को परमात्मा में अर्पित कर देता है और आसक्तिरहित होकर इस जीवन को जीता है, वह व्यक्ति उसी प्रकार है, जैसे जल में कमल। जिस प्रकार जल कमल को प्रभावित नहीं करता, उसी प्रकार इस व्यक्ति को कोई भी पाप स्पर्श नहीं करता। भगवान आगे बतलाते हैं कि कर्म करते समय संन्यासी का उद्देश्य क्या होना चाहिए–

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥5.11॥

जो कर्मयोगी है, जो कर्तापन का त्याग कर चुका है और संन्यास की भावना को प्राप्त कर चुका है, वह अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करता है। यहाँ पर भगवान ने एक निश्चित लक्ष्य भी दे दिया है कि कर्म में तुम अपनी पूरी जी-जान लगा दो। कर्म को मत त्यागो, कर्म को करते रहो, लेकिन उस कर्म में आत्मशुद्धि का प्रयोजन भी जोड़ दो।

आत्मशुद्धि का तात्पर्य यह कि हम किसी चीज पर प्रतिक्रिया व्यक्त न करें। सामान्य रूप से व्यक्ति हर क्रिया का जवाब किसी प्रतिक्रिया से देता है। लेकिन अगर हमारे द्वारा प्रतिक्रिया न हो तो इसका मतलब अन्तःकरण की शुद्धि हो गयी है। अगर कोई गाली दे तो विचलित नहीं होना और अगर कोई अच्छे शब्द कहे, तो मन में सुख की उत्तेजना का अनुभव मत करना। जब तुम अपनी प्रतिक्रिया को रोक पाओगे, तब वह तुम्हारे भीतर की नकारात्मक ऊर्जा को नहीं निकालेगी। किसी ने थप्पड़ मारा तो उसे भी दो मुक्के मार देना, यह एक नकारात्मक अभिव्यक्ति हो गई। जब वह नहीं रहेगी, तब आत्मशुद्धि की स्थिति स्वतः आ जाएगी।

समन्वित योग साधना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती प्रणीत 'यौगिक जीवन' से उद्धृत

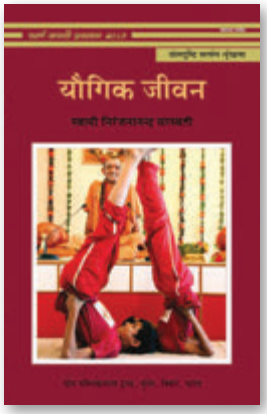

योग का अभ्यास और अनुभव केवल कक्षा तक सीमित नहीं है। योग को तुम बेशक कक्षा में सीखते हो, लेकिन उसके बाद उन सिद्धांतों और विधियों को अपने दैनिक जीवन में सम्मिलित करना चाहिए। योग कक्षा में डेढ-दो घण्टे बिताकर जब लोग यह सुनते हैं कि उन्हें इन विधियों का प्रतिदिन घर पर भी अभ्यास करना होगा, तो सामान्य प्रतिक्रिया घबराहट और झुंझलाहट की होती है। लोग सोचने लगते हैं, 'मैं अपनी व्यस्त दिनचर्या में दो घण्टे का योगाभ्यास कैसे शामिल कर पाऊँगा? इसके लिए मुझे सबेरे बहुत जल्दी उठना पड़ेगा, अपनी दिनचर्या में बहुत-से परिवर्तन लाने होंगे?' वे इस तरह की अनेक अटकलें लगाने लगते हैं और दुविधाग्रस्त हो जाते हैं। कुछ लोग कक्षा में सिखाये गये अभ्यासों को एक-दो घण्टे घर पर करने का प्रयास भी करते हैं, लेकिन कुछ समय बाद उनका उत्साह ढीला पड़ जाता है। दूसरी परिस्थितियाँ और जिम्मेदारियाँ उनकी दिनचर्या पर हावी होने लगती हैं और कुछ हफ्तों या महीनों बाद उनका योगाभ्यास छूट जाता है।

योग का अभ्यास इस तरीके से नहीं करना है। कक्षा में चाहो जितना सीखो और अभ्यास करो, लेकिन घर पर वह सब करने की कोशिश मत करो। बल्कि जो सीखा है, उसका छोटे-छोटे कैप्सूल रूप में दिन में जब भी अनुकूल समय मिले, अभ्यास कर लो। इस तरह अपने योगाभ्यास में थोड़ा फेर-बदल करके उसे अपनी दिनचर्या के अनुकूल बनाओ। तुम्हें यह देखना होगा कि कौन-से अभ्यास तुम प्रतिदिन कर सकते हो, कौन-से अभ्यास प्रति सप्ताह, कौन-से अभ्यास प्रति माह और कौन-से अभ्यास प्रति वर्ष। इस तरह से अपने लिए योग का सालाना कार्यक्रम तैयार कर लो। अगले साल वह कार्यक्रम बदल सकता है और धीरे-धीरे तुम योग मार्ग में प्रगति कर सकते हो।

प्रातःकालीन मंत्र साधना

सबेरे जिस क्षण हमारी नींद खुलती है, उसी क्षण से हमारी दिनचर्या आरम्भ हो जाती है। जब हम सबेरे जागते हैं उस समय हमारा मस्तिष्क शांत रहता है, उसमें चंचलता नहीं होती। जैसे-जैसे दिन बीतता है और हम अपने परिवार, समाज और व्यवसाय से जुड़ने लगते हैं, वैसे-वैसे मन-मस्तिष्क में उत्तेजना आती है।

विज्ञान बतलाता है कि मस्तिष्क के भीतर चार प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं– बीटा, अल्फा, थीटा और डेल्टा। ये चार विद्युतीय तरंगें मस्तिष्क के भीतर उत्पन्न होकर मस्तिष्क के व्यवहारों को नियंत्रित करती हैं। जब बीटा तरंग आती है तब मन-मस्तिष्क चंचल रहता है, संसार से जुड़ा रहता है। जब तुम सोकर उठते हो, उस समय तुम्हारा मन संसार से जुड़ा नहीं होता। अखबार और टेलीविजन का प्रभाव अभी मन पर नहीं पड़ा है। मस्तिष्क शांत और स्थिर है, उसमें अल्फा तरंगों की प्रधानता है। इस समय मन के भीतर जो विशेष अवस्था होती है, उसे अवचेतन अवस्था कहते हैं। जब तक हम अपने मुँह पर पानी के छींटे नहीं देते, दाँत-मुँह नहीं साफ करते, स्नान नहीं करते और जब तक शरीर की इन्द्रियाँ क्रियाशील नहीं होतीं, तब तक निद्रा से उठने पर अवचेतन अवस्था प्रधान होती है। इस अवचेतन अवस्था में संसार के विषयों की जो पहली मुहर पड़ती है, वह हमारे दिन को उसी दिशा में मोड़ देती है।

इसलिए सबेरे उठते ही कुछ ऐसे संकल्प लो जो तुम्हारे अवचेतन में प्रवेश करें और तुम्हारे जीवन के लिए हितकर हों। इसके लिए योग में एक तरीका बतलाया गया है और वह तरीका है मंत्र का। मंत्र शक्ति चेतना की चंचलता और तनावों को तो दूर करती ही है, साथ ही इससे अवचेतन मन में संकल्प का बीजारोपण भी होता है। जब सबेरे उठते हो, तब हाथ-मुँह धोने, शौचालय जाने या स्नान करने से पहले बिस्तर में ही पाँच मिनट सीधे बैठ जाओ। आरोग्य का एक संकल्प लेकर महामृत्युंजय मंत्र का जप ग्यारह बार कर लो। उसके बाद मानसिक प्रतिभा के विकास और मानसिक शांति का संकल्प लेकर ग्यारह बार गायत्री मंत्र का जप करो। फिर तीसरा संकल्प लो कि जीवन में कभी मेरी दुर्गति या दुर्दशा न हो, मैं हमेशा प्रसन्न, सुखी और मस्त रहूँ। इस प्रकार का संकल्प लेकर दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ तीन बार कर लो।

ये तीन मंत्र तुम्हारे मन को शक्ति प्रदान करेंगे, जीवन में कवच की भाँति बाहर की परिस्थितियों, तनावों, चिंताओं, तकलीफों से तुम्हारी रक्षा करेंगे। इन मंत्रों का जप करने में ज्यादा-से-ज्यादा सात-आठ मिनट का समय लगता है। यह नहीं सोचना कि मैं तो अभी उठा हूँ, नहाया नहीं हूँ, मुँह नहीं धोया हूँ, मैं मंत्र-जप कैसे करूँगा। अगर जाकर नहा-धो लोगे तो मंत्र प्रभावी नहीं होगा। वह यंत्रवत् अभ्यास हो जाएगा, क्योंकि उस समय मन की स्थिति बदल जाती है। लेकिन अगर तुम अर्द्धचेतनता की ही स्थिति में बैठकर इन तीन मंत्रों का जप कर लोगे, तो तुम्हें ही उपलब्धि होगी। स्वास्थ्य को प्राप्त करोगे, प्रतिभा को प्राप्त करोगे, जीवन में हमेशा मंगल होगा, दुर्गति और दुर्दशा से मुक्त रहोगे। तीन मंत्रों की यह साधना सबेरे का पहला योग कैप्सूल है और यह मंत्र-साधना करने में किसी को झिझक नहीं होनी चहिए, चाहे वह किसी भी धर्म-सम्प्रदाय से क्यों न जुड़ा हो, क्योंकि इन मंत्रों का प्रयोजन तुम्हारा व्यक्तिगत उत्थान है। ये मंत्र तुम्हारे व्यक्तित्व के विकास में सहयोग देंगे।

आसन और प्राणायाम का अभ्यास

मंत्र-साधना के पश्चात् आता है आसनों का अभ्यास। नहा-धोकर तैयार होकर, नाश्ते से पहले पन्द्रह मिनट आसनों का अभ्यास कर लो। यह बात हम एक सामान्य व्यक्ति के लिए बतला रहे हैं, एक बीमार आदमी के लिए नहीं। बीमार आदमी किसी योग कक्षा में जाकर अपनी बीमारी के लिए अगर योग सीखेगा और उसके अनुसार अभ्यास करेगा तो बीमारी से मुक्त हो सकता है। लेकिन यहाँ पर हम योग को एक साधना के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जो हमारी दिनचर्या से जुड़ी है।

आसनों के अभ्यास में कौन-से आसन शामिल होने चाहिए? योगाभ्यासियों को इस बिन्दु पर प्राय: दुविधा रहती है। वे प्रारम्भिक से लेकर उच्च अभ्यासों को सीख तो लेते हैं, लेकिन उन्हें समझ नहीं आता कि नियमित रूप से किसका अभ्यास करें। कुछ आसनों को वे थोड़े दिनों के लिए करते हैं, फिर सोचते हैं कि अब कुछ और आजमाना चाहिए। उनके अभ्यास में किसी प्रकार की निरंतरता नहीं रहती। निरंतरता के अभाव में अभ्यास का प्रभाव केवल शारीरिक स्तर पर होता है। बस पेशियों में थोड़ा लचीलापन आ जाता है और जोड़ों का कड़ापन थोड़ा कम होता है।

यौगिक दृष्टिकोण से दैनिक अभ्यास के लिए पाँच आसन ही पर्याप्त हैं। तुम्हारा शरीर सामान्य रूप से किस प्रकार हिल सकता है? शरीर को तानना एक गतिविधि है। आगे और पीछे झुकना एक अन्य गतिविधि है। बगल की ओर झुकना एक और गतिविधि है और शरीर को मोड़ना एक और। ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन और सूर्य नमस्कार—इन चार आसनों से शरीर की पाँचों मुख्य गतिविधियाँ सम्पन्न हो जाती हैं। इसके बाद सामान्य, स्वस्थ लोगों के लिए अंतिम अभ्यास है सर्वांगासन का। गुरुत्वाकर्षण के कारण हम लोगों का जो खून पैरों की तरफ जाता रहता है, पैरों में भार बना रहता है और पैर थकते रहते हैं, उसे हम इस अभ्यास के माध्यम से कुछ क्षणों के लिए उल्टा कर देते हैं। वास्तव में खून तो मस्तिष्क को चाहिए, पैरों को नहीं। दिनभर हम लोगों का खून नीचे ही ज्यादा जाता है और मस्तिष्क में कम। जब शरीर को उल्टा करोगे तब खून मस्तिष्क में जायेगा और वहाँ तीव्रता आएगी। प्रारम्भिक अभ्यासियों को अंतिम स्थिति में ग्यारह की गिनती तक रहना चाहिए, उससे अधिक नहीं। अभ्यास के साथ धीरे-धीरे इस अवधि को बढ़ाया जा सकता है।

दैनिक योगाभ्यास के लिए ये पाँच आसन पर्याप्त हैं। इनके अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इनके माध्यम से शरीर अपनी सभी सम्भव गतियों से गुजरता है। अन्य अभ्यासों का उपयोग शरीर की एक विकृत अवस्था को ठीक करने या किसी रोग का उपचार करने में हो सकता है, लेकिन ये जो पाँच सामान्य आसन हैं, सभी व्यक्तियों के लिए सम्भव हैं, चाहे वह बूढ़ा हो, जवान हो, पुरुष हो, महिला हो, लड़का हो या लड़की हो।

आसनों के बाद प्राणायाम का अभ्यास आता है, जिनमें सामान्य व्यक्ति के लिए दो महत्त्वपूर्ण हैं—नाड़ीशोधन और भ्रामरी प्राणायाम। एक नासिका से श्वास लेना और दूसरी नासिका से छोड़ना, फिर दूसरी नासिका से श्वास लेना और पहली से छोड़ना, इसका नाम नाड़ीशोधन प्राणायाम है। स्नायविक असंतुलन को दूर करने के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास कम-से-कम दस बार होना चाहिए, जिसे करने में तीन-चार मिनट का समय लगेगा।

नाड़ीशोधन प्राणायाम से नाड़ियों की शुद्धि होती है, नाड़ियों में प्राणों का संचार सुचारू रूप से होने लगता है। इससे मानसिक चिंता और उद्विग्नता का शमन होता है, स्नायविक विकार और असंतुलन स्वत: दूर होने लगते हैं। जब कभी मन अशांत हो या मस्तिष्क में थकान का अनुभव हो तब इस प्राणायाम का लघु अभ्यास कर लिया करो।

भ्रामरी प्राणायाम में अपनी तर्जनी अंगुलियों से दोनों कानों को बन्द करके गहरी श्वास अन्दर लेकर श्वास छोड़ते हुए कण्ठ से गुंजन की आवाज पैदा की जाती है और इसी आवाज पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा जाता है। इसका अभ्यास सात से दस बार करना। भ्रामरी प्राणायाम मस्तिष्क के तनाव को दूर करता है। जब हम कण्ठ में ध्वनि पैदा करते हैं, तब मस्तिष्क के अन्दर एक रसायन, मेलाटॉनिन का उत्पादन होने लगता है, जिससे तुरन्त शारीरिक विश्रांति तथा मानसिक तनावमुक्ति हो जाती है, उच्च रक्तचाप कम हो जाता है।

पाँच आसन और दो प्राणायाम, इतना करने में कुल बीस मिनट का समय लगता है और निश्चित रूप से अपने स्वास्थ्य के लिए हम रोज इतना समय तो खर्च कर ही सकते हैं। ऐसा नहीं कि तुम रोज एक घण्टा योगाभ्यास करो। पाँच-दस मिनट करो, फिर छोड़ दो। फिर जब उचित समय आता है तब कुछ और कर लो, फिर छोड़ दो।

अपराहन में योगनिद्रा

जब दोपहर या शाम को अपने काम-काज से घर लौटते हो, तब अपने कमरे में जाओ, दस मिनट के लिए बिस्तर पर लेट जाओ और संक्षिप्त योगनिद्रा का अभ्यास कर लो। सामान्य रूप से योगनिद्रा का अभ्यास आधा घण्टा करते हैं, लेकिन यहाँ पाँच-दस मिनट से ज्यादा के अभ्यास की जरूरत नहीं। इसे एक तरह से दीर्घ शवासन समझ सकते हो। जब शवासन करते हो तब अपने पेट के क्षेत्र में अपनी श्वास के प्रति सजग हो जाओ। अपनी श्वास को उल्टी गिनती करते हुए सौ से एक तक गिनो। सौ श्वास लेने में दस मिनट का समय लगता है और यह दस मिनट का शिथिलीकरण हो जाता है।

श्वास का ख्याल करने से मन और मस्तिष्क, दोनों शान्त हो जाते हैं। योगीजन शुरू से मानते आए हैं कि श्वास की गति मन की अवस्था का प्रतीक है। अगर मन चंचल है तो श्वास भी चंचल, और अगर मन शान्त है तो श्वास भी धीमी और लम्बी होती है। मन को ठीक करने के लिए योगियों ने श्वास को आधार बनाया। अगर तुम अपनी श्वास को नियंत्रित कर पाओगे तो अपने मन को भी शान्त कर सकोगे। इसलिए दिनभर के तनाव, चिन्ता और परेशानी से प्रभावित मन को शान्त करने के लिए श्वास की सौ से एक तक उल्टी गिनती लम्बे शवासन के समय किया करो।

शिथिलीकरण के लिए एक और विधि है चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाना। योगनिद्रा का पूरा अभ्यास करने के बजाय शवासन में लेट जाओ, आँखों को बंद कर लो और अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाते हुए, उन्हें शिथिल करते जाओ। पूरे शरीर में चेतना घुमा लेने के बाद अभ्यास को समाप्त कर दो और फिर उसके बाद शाम का जो भी घरेलू कार्यक्रम है, वह कर लो।

इतिहास बतलाता है कि फ्रांस का बादशाह, नेपोलियन अपने घोड़े के ऊपर बैठे-बैठे दस मिनट सोता था और उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जाता था। दस मिनट में क्या करता था? बैठकर योगनिद्रा का अभ्यास करता था। गाँधीजी दिनभर काम करते थे और जब परिस्थितिवश उन्हें रात को जागना होता था तो वे बीच में दस मिनट के लिए अपने कमरे चले जाते थे, योगनिद्रा का अभ्यास कर लेते थे, फिर वापस आ जाते थे। मैं यह समझाने के लिए ये उदाहरण दे रहा हूँ कि जब शरीर और मन थक जाता है, जब बुद्धि में थकान के कारण कुछ सूझता नहीं है, तब दस मिनट के लिए लम्बा शवासन या लघु योगनिद्रा कर लेने से शरीर और मन को पुनः तरो-ताज़ा किया जा सकता है।

सोने से पहले ध्यान का अभ्यास

अंत में रात को सोने से पहले दस मिनट बैठकर ध्यान का अभ्यास कर लो। ध्यान के लिए दो विधियों का प्रयोग कर सकते हो, अंतर्मौन और अजपाजप। पहले पाँच मिनट

में अपने विचारों के प्रति सजग हो जाओ ताकि यह देख सको कि मन में किस प्रकार के विचार, किस प्रकार की उत्तेजना, किस प्रकार की चंचलता है। अगर मन में बहुत-से विचार आ रहे हैं, दफ्तर और घर की चिन्ता है, तो उस समय विचारों का द्रष्टा बनने का प्रयास करो। यह अंतर्मौन का अभ्यास है। जो विचार तीव्र, चंचल गति से मन में आ रहे हों, उनके साक्षी बनो। देखते रहो, रोकने का प्रयास मत करो। बहुत-से विचार आयेंगे, 'आज मेरा इस आदमी के साथ झंझट हो गया, आज मेरी तरक्की हो गई, आज मैं बेटे के स्कूल की फीस नहीं जमा कर पाया, बेटी की शादी के लिए जो रिश्ता खोज रहा था उसने मना कर दिया।' मन में सौ प्रकार के विचार आयेंगे, लेकिन उनमें अपने आपको लिप्त नहीं करना, बल्कि उनका द्रष्टा बनना। जब तुम किसी विचार को देख लेते हो, उसकी पहचान कर लेते हो, तब उस विचार का तुम्हारे मन पर प्रभाव नहीं होता। विचारों का प्रभाव मन पर तब होता है, जब तुम विचारों को नहीं जानते। इसलिए जो भी विचार आए, अच्छा हो या बुरा, सुन्दर हो या खोटा, सभी को देखते जाओ, किसी को रोकने का प्रयास मत करो। ऐसा पाँच मिनट तक करो।

फिर पाँच मिनट शान्तिपूर्वक बैठकर अपनी श्वास को देखो। श्वास का ख्याल करते हुए अनुभव करो कि श्वास नाभि से भ्रूमध्य तक ऊपर चढ़ रही है। श्वास छोड़ते समय अनुभव करो कि श्वास भ्रूमध्य से नाभि तक नीचे आ रही है। उस समय 'सोऽहम्' मंत्र को भी श्वसन क्रिया के साथ जोड़ दो। जब श्वास अन्दर लेते हो तब मानसिक रूप से 'सो' मंत्र का उच्चारण करो, जब छोड़ते हो तब 'हम्' मंत्र का। इस प्रकार पाँच मिनट तक सोऽहम् का यह क्रम चलते रहेगा।

इस ध्यान के अभ्यास के पश्चात् फिर सो जाना। जो तनाव और चिंताएँ अवचेतन में प्रवेश कर जाती हैं, उनको हम ध्यान के द्वारा मन से बाहर निकाल देते हैं और आराम की नींद सो सकते हैं, ताकि अगली सुबह हम ऊर्जायुक्त हो सकें। रात को ध्यान इसलिए जरूरी है। नहीं तो अचेतन तनाव रात को निद्रा में भी मनुष्य को विश्राम नहीं लेने देते। सोने के बावजूद भी थकान नहीं मिटती, शरीर में आलस्य बना रहता है, ऊर्जा एवं प्राणों की कमी महसूस होती है। लेकिन अगर आदमी सोने से पहले दस मिनट के लिए ध्यान करे तो सबेरे उसका मन और मस्तिष्क, दोनों तनावमुक्त, स्पष्ट और रचनात्मक होते हैं।

सबेरे उठते ही तीन मंत्रों का जप, नाश्ते से पहले पन्द्रह-बीस मिनट के लिए पांच आसनों और दो प्राणायामों का अभ्यास, शाम को घर लौटकर दस मिनट का शवासन या योगनिद्रा का अभ्यास और रात को सोने से पहले दस मिनट का ध्यान—यह ऐसी दिनचर्या है, जिसका पालन हर व्यक्ति प्रतिदिन अवश्य कर सकता है। भले ही हम दिन में योगाभ्यास के लिए एक घण्टे की अखण्डित अवधि न निकाल सकें, लेकिन उस एक घण्टे को दस-बीस मिनट की छोटी-छोटी अवधियों में, छोटे-छोटे कैप्सूलों में विभाजित कर उन्हें अवश्य अपनी दिनचर्या का अभिन्न

अंग बना सकते हैं। यह प्रतिदिन का नियम होना चाहिए और यह नियम सोमवार से शनिवार तक छः दिन का होता है।

रविवार के दिन षट्कर्म

रविवार को छुट्टी, पर इस दिन दो षट्कर्म, कुंजल और नेति कर लो। कुंजल यानि पानी पीकर उसे बाहर वमन कर देना। कुंजल करने से क्या होगा? पाचन तंत्र में पित्त, कफ और वायु के रूप में जो विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें अपने शरीर में संतुलित रख पाओगे। पित्त, वायु और कफ के विकार शरीर के लिए हानिकारक होते हैं। समय-समय पर चाहिए कि हम अपने पेट को साफ रखें ताकि इन विकारों की वृद्धि न हो।

कुंजल के पश्चात् नेति का अभ्यास कर लो। लोटे से एक नासिका में पानी डालकर दूसरी नासिका से बाहर निकालना। नेति से नासिकाएँ साफ हो जाती हैं, साइनस साफ हो जाता है। भ्रूमध्य में बहुत-सी सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं, जिनका सम्बन्ध आँखों, कानों, नाक और मस्तिष्क से रहता है। जल प्रवाह के कारण इन नाड़ियों में संवेदना की उत्पत्ति होती है। यह संवेदना आँखों को प्रभावित करती है। जो लोग निकट दृष्टि-दोष से पीड़ित हैं, वे अगर नेति करेंगे तो उन्हें फायदा होगा। धूल-गर्मी से जो परेशानी होती है, आँखें लाल हो जाती हैं, इस तरह की समस्याओं में भी लाभ होगा। लोगों को कानों की भी समस्या होती है। बहुत बार कान बंद हो जाते हैं, बहुत बार लोगों का सुनना कम हो जाता है। नाक की समस्या होती है, सर्दी में हमेशा बंद रहता है, आदमी ठीक से बोल नहीं पाता है, नाक से श्वास नहीं ले पाता है, मुँह से श्वास लेता है। कई लोगों को माइग्रेन और सरदर्द की समस्या होती है। इस तरह की जितनी भी समस्याएँ हैं, उन्हें तुम नेति से दूर कर सकते हो। नेति के बाद मस्तिष्क में हल्केपन का अनुभव करोगे। इसलिए सप्ताह में एक दिन षट्कर्म का अभ्यास अवश्य करो।

साप्ताहिक चर्या

सप्ताह में एक बार समय निकालकर किसी एकांत स्थान में चार कागज लेकर बैठ जाओ। पहले कागज पर अपने सामर्थ्यों, अपने गुणों को लिखो। दूसरे कागज पर अपनी कमजोरियों को लिखो। तीसरे कागज पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, अभिलाषाओं और अपेक्षाओं को लिखो। चौथे कागज पर अपनी आवश्यकताओं को लिखो। ये तुम्हारे जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ होनी चाहिए, कामनाएँ नहीं। इस सूची को कालान्तर में बढ़ाते जाओ। यह काम एक दिन में पूरा नहीं होगा। मुझे अपनी सूची बनाने में कई महीने लगे। एक सप्ताह मैं कोई एक चीज जोड़ता, फिर अगले सप्ताह जब विश्लेषण करता तो सोचता, 'नहीं, यह सही नहीं है। मुझे यह चीज यहाँ से हटाकर दूसरी सूची में डालनी चाहिए। यहाँ कुछ और आना चाहिए।' इस प्रकार तुम भी अपने सामर्थ्यों, कमजोरियों, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं का विश्लेषण करो। इसमें समय जरूर लगेगा। हो सकता है एक महीना लगे, हो सकता है दो-तीन महीने लगें। लेकिन धीरे-धीरे तुम अपने स्वभाव और चरित्र के बारे में बहुत कुछ जानने लगोगे। तुम अपने सामर्थ्यों के प्रति सजग बनोगे और जीवन की ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ तुम्हारी कमजोरियाँ उजागर होती हैं, वहाँ तुम उन कमजोरियों के प्रतिपक्ष सामर्थ्यों का प्रयोग कर उन परिस्थितियों का बेहतर ढंग से सामना कर पाओगे।

यह ज्ञानयोग का व्यावहारिक अभ्यास है, जिसे हम स्वान साधना कहते हैं। ज्ञानयोग मात्र यह प्रश्न करना नहीं है कि मैं कौन हूँ, बल्कि अपनी त्रुटियों को पहचानकर उन्हें सुधारने का प्रयास है, अपने सामर्थ्यों को पहचानकर उन्हें विकसित करने का प्रयत्न है। जब तुम इस प्रकार की सूची बना लेते हो तो एक सप्ताह के लिए किसी एक सामर्थ्य और किसी एक कमजोरी को चुन लो। सप्ताहभर सजग रहो कि वह कमजोरी तुम्हें कब प्रभावित करती है और कब तुम अपने उस सामर्थ्य का उपयोग कर पाते हो। इस तरह का साप्ताहिक अभ्यास करने से तुम पाओगे कि सालभर में तुम्हारे चरित्र में अनेक सकारात्मक परिवर्तन आ गए हैं।

सप्ताह में एक दिन मंत्र साधना के लिए भी समय निकालो। हमारे गुरुजी ने यह परम्परा चलाई है कि योगाभ्यासियों के घरों में हर शनिवार को महामृत्युंजय मंत्र का जप होना चाहिए। मुंगेर में बहुत-से लोगों ने इस पद्धति को अपनाया है। अपने घरों में हर शनिवार को पूरे परिवार को साथ लेकर महामृत्युंजय मंत्र का जप करते हैं। वह जप एक भावनात्मक संगठन उत्पन्न करता है। उस संगठन के कारण पारिवारिक अशांति दूर हो जाती है। परिवार के सदस्य एक-दूसरे को समझने लगते हैं, आपस में मिलना हो जाता है। नहीं तो आजकल कौन मिलता है? केवल टी.वी. देखने या कभी-कभी भोजन के लिए मिलते हैं। लेकिन जब अपने व्यक्तिगत उत्थान के लिए एक पारिवारिक प्रयास होता है, तब मन-मस्तिष्क पर उसका ज्यादा प्रभाव होता है।

अगर आप अकेले अभ्यास करेंगे तो मन में हमेशा असंतोष रहेगा कि हम अकेले कर रहे हैं। लेकिन अगर पूरा परिवार पन्द्रह-बीस मिनट के लिए साथ बैठ जाता है और सब मिलकर सस्वर एक माला जप कर लेते हैं, तब उसमें सभी को संतोष होता है, सभी का सहयोग मिलता है, सबकी भावना एक दिशा में प्रवाहित होती है। इससे पारिवारिक संगठन की वृद्धि होती है और परिवार में शांति आती है।

मासिक चर्या

दिनचर्या से साप्ताहिक चर्या तक धीरे-धीरे योग को अपने जीवन में आत्मसात् करते जाओ। फिर आती है मासिक चर्या। हर महीने अपने लिए एक-एक यम और नियम का अभ्यास निश्चित कर लो। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य—ये पाँच यम हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं। किसी एक यम को पकड़ लो। उदाहरण के लिए अहिंसा को ही लो। एक महीने तक देखो कि मन में किस प्रकार के विचार आते हैं। किसी के प्रति खोटे विचार, दूषित विचार, नकारात्मक विचार आते हैं तो रोक दो। अपने मन को हिंसा की वृत्ति से महीने भर मुक्त रखने का प्रयास करो। हो सकता है दस प्रतिशत, पाँच प्रतिशत या एक प्रतिशत ही सफलता मिले। कोई बात नहीं। महीने बाद उसे छोड़ दो और दूसरे यम को पकड़ लो। फिर उसको छोड़ दो और तीसरे यम को पकड़ लो। इसी प्रकार से नियमों के साथ भी करो।

इस प्रकार जीवन में यम और नियम का अभ्यास सहजता से हो जाएगा। यम-नियम के अभ्यास से मनुष्य का व्यवहार परिवर्तित होता है। व्यवहार ही नहीं, मानसिकता, मनोदशा, मनोवृत्ति सब बदल जाते हैं। तुम खुद अनुभव करोगे कि जीवन में संतोष, शांति, प्रतिभा और स्पष्टता आ रही है। सभी लोग आसन-प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए तत्पर होते हैं, लेकिन यम-नियम का अभ्यास कौन करता है? अगर सच्चे योग साधक हो तो आजमाकर देखो, क्योंकि अंत में फायदा तो तुम्हें ही होने वाला है। तुम और भी अच्छे आदमी बनोगे, अच्छे संस्कारों से जुड़ोगे, जीवन में अच्छे गुण आएँगे, व्यवहार और आचरण संयमित एवं अनुशासित होगा। यही यम और नियम का वास्तविक प्रयोजन भी है।

वार्षिक चर्या

एक नियम बना लो कि साल में एक बार सप्ताह-दस दिन के लिए किसी आश्रम या किसी तीर्थस्थान में जाना है। इससे वातावरण परिवर्तन होगा। हमारे ऋषि-मनीषी कहते थे कि तुम किसी ऐसी जगह जाओ जहाँ पर कुछ समय के लिए दूसरे वातावरण में रह सको। वह वातावरण तुम्हारे उत्थान का कारण बनना चाहिए। विदेशी लोग छुट्टियों में सैर करने, मौज उड़ाने जाते हैं, लेकिन भारतीय परम्परा में जब लोग घर

से बाहर जाते थे तो तीर्थों या आश्रमों में जाते थे, क्योंकि वहाँ के भिन्न वातावरण में रहकर, भिन्न चिंतन में रहकर उनके दिमाग में बदलाव होता था, उनकी बैट्री रीचार्ज होती थी।

यह एक नियम हो जाना चाहिए। साल में एक बार कुछ दिनों के लिए किसी तीर्थ चले गये, वहाँ रहे, घूमे, थोड़ा चिंतन किया, थोड़ा अनुष्ठान किया, योग-जप किया, थोड़ा आराम किया, फिर वापिस आ गए। या किसी आश्रम में चले गये। भारत में तो अनेकों आश्रम हैं। अपनी सुविधानुसार किसी भी आश्रम में चले गए, वहाँ सत्संग में, स्वाध्याय में, साधना में, चिंतन में, सेवा में कुछ समय बिताया। फिर वापस आ गए। इससे बैट्री चार्ज होती है।

हमारे गुरुजी हमसे कहा करते थे कि निरंजन, मस्तिष्क और मन वास्तव में टार्च लाईट की बैट्री की तरह है। तुम टार्च लाईट का जितना उपयोग करोगे उतनी अधिक बैट्री खर्च होगी। जब मन की ऊर्जा समाप्त हो जाती है तब यह निष्क्रिय हो जाता है। इसकी रचनात्मकता और सकारात्मकता खत्म हो जाती है। जब यही स्थिति लम्बे समय तक कायम रहती है तब फिर मानसिक अवसाद का सामना करना पड़ता है। जीवन अंधकारपूर्ण, संघर्षपूर्ण, दु:खपूर्ण और नीरस दिखलाई देता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि समय-समय पर किसी आश्रम या किसी तीर्थ में रहकर अपनी बैट्री को फिर से एक साल के लिए चार्ज कर ले, और एक नयी प्रेरणा, नये चिंतन, नये विश्वास को लेकर अपने सांसारिक कार्य में संलग्न हो जाए।

यह एक साल का कार्यक्रम है। दैनिक कार्यक्रम में मंत्र, आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा और ध्यान। साप्ताहिक कार्यक्रम में षट्कर्म, मंत्र साधना और स्वान साधना। पाक्षिक या मासिक कार्यक्रम में एक यम और एक नियम को पकड़ लेना। और वार्षिक कार्यक्रम है किसी तीर्थ या आश्रम में जाकर कुछ समय बिताना। यह दैनिक जीवन में योग साधना की संक्षिप्त और व्यावहारिक प्रक्रिया है, जिसे हमने आपके सामने रखा है। इसमें आप हठयोग भी कर रहे हो, राजयोग भी कर रहे हो, कर्मयोग भी कर रहे हो, ज्ञानयोग भी कर रहे हो और भक्तियोग भी कर रहे हो। आपके जीवन में सभी योगों का सहज समावेश हो रहा है।

अभिलाषा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा
नौ वर्ष की अवस्था में रचित कविता
(स्वर्णिम संग्रह-1 से उद्धृत)

करूँ काम सेवा का जग में,
जिससे जग का हो उपकार।
करूँ काम वैसा ही जग में,
जिससे मिटे जगत् का भार॥

सत्य, अहिंसा और सेवा की,
मैं साकार मूर्ति बन जाऊँ।
छीन इन्द्र से स्वर्ग सिंहासन,
मैं सहर्ष भूतल पर लाऊँ॥

जीवन हो सद्गुण से पूरित,
नहीं करूँ पर-अपर आशा।
करूँ विश्व की सेवा मैं कुछ,
यही एक मेरी अभिलाषा॥

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

संन्यास दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 416, ISBN: 978-93-81620-12-0

इस पुस्तक में संन्यास-वंश-परम्परा, संन्यास के उद्गम, आश्रम-व्यवस्था, संन्यास की अवस्थाओं, पारम्परिक नियमों एवं शर्तों के साथ-साथ संन्यास की आधुनिक अवधारणा एवं वर्त्तमान जीवन में संन्यास पर प्रकाश डाला गया है। संन्यास-वंश-परम्परा की चार महान् विभूतियों – दत्तात्रेय, आदि शंकराचार्य, स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के जीवन, कार्य एवं शिक्षाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। पुस्तक के अन्तिम खण्ड में पाँच मुख्य संन्यास उपनिषदों पर स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की व्याख्या का भी समावेश किया गया है।

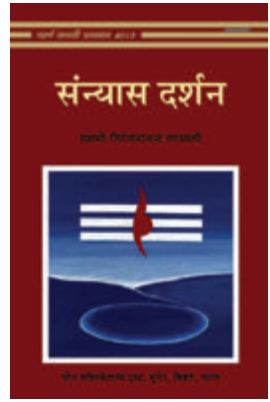

स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2014-2015

दिसम्बर 11-14	आश्रम जीवन, योग एवं सत्संग
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 1 2015	श्री हनुमान चालीसा
जनवरी 2-11	क्रिया योग सत्र (स्पैनिश एवं इटालियन)
जनवरी 21-24	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 24	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 1-मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1-30	योग अनुदेशक सत्र (हिन्दी)
मार्च 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-दमा (हिन्दी)
जून 1-जुलाई 25	द्विमासिक योग विज्ञान एवं जीवनशैली परिचय सत्र (हिन्दी)
जुलाई 27-30	स्वामी निरंजन के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015-मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

अभिलाषा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा
नौ वर्ष की अवस्था में रचित कविता
(स्वर्णिम संग्रह-1 से उद्धृत)

करूँ काम सेवा का जग में,
जिससे जग का हो उपकार।
करूँ काम वैसा ही जग में,
जिससे मिटे जगत् का भार॥

सत्य, अहिंसा और सेवा की,
मैं साकार मूर्ति बन जाऊँ।
छीन इन्द्र से स्वर्ग सिंहासन,
मैं सहर्ष भूतल पर लाऊँ॥

जीवन हो सद्गुण से पूरित,
नहीं करूँ पर-अपर आशा।
करूँ विश्व की सेवा मैं कुछ,
यही एक मेरी अभिलाषा॥